गंगाद्वार

लक्ष्मीनारायण मिश्र

विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

गंगाद्वार

[सांस्कृतिक ऐतिहासिक नाटक]

पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र
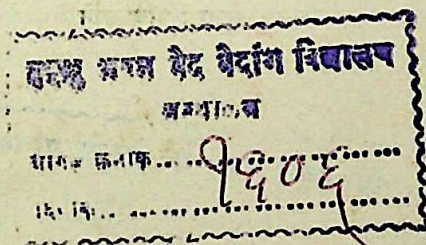
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

GANGADWAR

[Cultural and Historical Drama]

By

Pt. Lakshmi Narain Mishra

तृतीय संस्करण : १९८० ई०

मूल्य : पाँच रुपये

प्रकाशक—विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक; वाराणसी–१

मुद्रक—धर्मराज प्रिंटिंग प्रेस, मीरापुर बसही, वाराणसी।

यह कविकर्म

विक्रमपूर्व पाँचवीं और दूसरी शती के बीच महान् विभूति-सम्पन्न तीन महापुरुष इस देश में ऐसे हो चुके हैं जिनकी प्रशस्ति के अनेक श्लोक मेरे कानों को धन्य करते रहे हैं। जिन्हें सुनकर, पढ़कर मुझे रोमांच होता रहा है। जिनसे मन, बुद्धि और चित्त के उत्कृष्ट संस्कार का मैं स्वाद लेता रहा हूँ। महात्मा गान्धी ने परमहंस रामकृष्णदेव की अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित जीवनी की भूमिका तो अंग्रेजी में लिखी पर उसके नीचे तिथि विक्रम संवत् के चान्द्रमास की दी थी। उस जीवनी की भूमिका उन्होंने अवश्य विदेशी भाषा में लिखी। इसलिए कि विदेशों में प्रचार के लिए रामकृष्णदेव की जीवनी ही अंग्रेजी में लिखी गयी थी पर तिथि देशी क्यों दी? गान्धी के जीवन में किसी ने इस 'क्यों' का उत्तर नहीं माँगा। अब तो गान्धी मिलेंगे नहीं। अपनी आस्था और अनुमान से ही कोई भी इस प्रश्न का उत्तर देना चाहेगा। हम किसी भी अनुष्ठान के संकल्प में अमुक तिथि, अमुक वासर, अमुक संवत् शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसलिए कि इस रूप में हम अनुष्ठान के संकल्प के पवित्र संस्कार की रक्षा करते हैं, जैसा पूर्वज करते आये, वही कर्म इस रूप में करते हैं। गान्धीजी ने जिस देशी मन से, देशी दृष्टि से अंग्रेजी भूमिका की तिथि देशी दी थी, उसी देशी मन से साहित्यकार इस देश में साहित्य की रचना करते आये। देशी मन का अर्थ है; जातीय स्मृति का विस्तार—श्रुति से स्मृति तक, पुराण-परम्परा से महाभारत-रामायण तक। विक्रमपूर्व की भारतीय मेधा के विस्तार से पश्चिमी विद्वान् उन्नीसवीं शती-भर चमत्कृत होते रहे, शंकराचार्य से तुलसीदास तक इस देश के सभी महापुरुष इसी जातीय स्मृति के विस्तार की उपज हैं।

इस जातीय स्मृति के विस्तार में भगवान् बोधायन विक्रमपूर्व पाँचवीं शती में अवतरित हुए थे जिनके ग्रंथों पर जर्मनी में बहुत काम हुआ। बोधायन के ग्रंथों से प्रेरित होकर भारतीय मेधा का आकर्षण पश्चिमी जगत् में बढ़ा था। बोधा-

यन के अतिरिक्त चार नाम इन महापुरुष के और मिलते हैं : "उपवर्षों हलभूतिः कृतकोटिरयाचितः" त्रिकाण्ड शेष। इनकी अगाध विद्या से प्रभावित होकर नन्दिवर्धन ने राज-पण्डितों में प्रधान स्थान इन्हें ग्रहण करने को कहा। राजभोग से अधिक प्रिय इन्हें नैसर्गिक स्वतन्त्रता लगी और सम्राट् नन्दिवर्धन का आग्रह इन्होंने न माना। विद्वान् के विरोध में बलप्रयोग का साहस वह सम्राट् भी न कर सका और बड़े अनुनय-विनय से किसी प्रकार एक बार इन्हें अपनी राजसभा में सम्मानित करने का वह अवसर पा सका। राजा ने इन्हें बहुत कुछ देना चाहा— धन, धरती, पद और मर्यादा, पर बोधायन ने कुछ भी ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। तब नन्दिवर्धन इन्हें उसी राजसभा में 'अयाचित' उपाधि से विभूषित कर स्वयं इनके पीछे इनके आश्रम तक इन्हें पहुँचा आया। इनके अन्य नामों के साथ भी कोई-न-कोई सत्य घटना लगी है पर विस्तार-भय से यहाँ सब न दिया जा सकेगा। नन्द-सम्राटों के प्रभाव और लोभादि से दूर रहने के लिए इनका अधिकांश समय श्री रामचन्द्र की जन्मभूमि अयोध्या के सरयू तट पर बीतता था। इनके प्रसंग को अनेक प्रशस्तियों में एक प्रशस्ति देकर सन्तोष करना पड़ रहा है :

अद्यापि बोधायनसूक्तिवल्ली-प्रसूनगन्धैर्बुधसंघभृङ्गाः।
रात्रिन्दिवं मोदभरेणनूले शास्त्रौघकुंजे विचरन्त्यजस्रम् ॥

भगवान् बोधायन की सूक्तिलता के सुमनों के सौरभ से तृप्त होकर विद्वन्मण्डलीरूपी भौंरों की राजि शास्त्रों के कुंजों में आज भी रात-दिन विचरण कर रही है। शास्त्र के आधार से बोधायन ने लोक-जीवन को गति दी थी। वेद-विरोधी सम्प्रदायों की बाढ़ देश में आ चुकी थी। उस बाढ़ को पार करने के सेतु बोधायन बने थे। बोधायन का प्रभाव आचार्य चाणक्य और मुनिप्रवर पतंजलि पर तो पड़ा ही था, शबरस्वामी, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य ने भी इनके नाम के पूर्व भगवान् शब्द का व्यवहार अपने भाष्यों में किया हैं। इनके ग्रन्थों के विभिन्न विषय इनकी विद्या के साथ ही इनके लोक-व्यवहार को भी उजागर करते हैं। भारत की समूची भूमि का पर्यटन इन्होंने वैसे ही किया था जैसे बाद में शंकराचार्य ने किया। वेद-विरोधी सम्प्रदाय पुरुषार्थ-चतुष्टय का लोप न कर दें,

इस एक कार्य के लिए बोधायन ने विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ तो लिखा ही, निरन्तर प्रवचन और तीर्थयात्रा भी करते रहे। तीर्थयात्रा के माध्यम से मातृभूमि का दर्शन और लोक-जीवन को गतिमान् करना महाभारत-काल में भी था, उसी को बोधायन ने चालू किया जिसका अनुसरण चाणक्य और पतंजलि ने तो किया ही, शंकराचार्य भी उसी पथ के पथिक रहे। तक्षशिला के आचार्य विष्णुगुप्त का सम्बन्ध भी अयोध्या से घना रहा। पतंजलि की कर्मभूमि अयोध्या रही और इसी केन्द्र से पतंजलि ने यवन-संहार से मध्य देश की रक्षा की थी। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि तीर्थयात्रा का अर्थ ही देश की भावात्मक एकता रही है। भावात्मक एकता के एक लक्ष्य ने ही तीर्थयात्रा को धर्म का रूप दिया था। शंकराचार्य के चार धामों का अर्थ भी देश की भावात्मक एकता ही है। देश की भावात्मक एकता को जिन महापुरुषों ने मोक्ष का नाम दिया वे धन्य थे। यह देश उन्हीं के बल पर आज भी टिका है और टिका रहेगा। तीर्थयात्रा में मातृभूमि के सभी रूपों का दर्शन और सम्पर्क भी मिलता है।

इस देश में राजशक्ति जब-जब निर्बल पड़ी है; विदेशी आक्रान्ताओं को रोकने की शक्ति जब राजशक्ति में नहीं रही है, तब-तब इस देश के आचार्यों ने अपनी शिष्यमण्डली के सहयोग में लोक-शक्ति के बल से उन्हें रोका है। इस देश के इतिहास में बोधायन, चाणक्य और पतंजलि जैसे आचार्यों के कर्म जब खोज लिये जाएंगे तभी वह इतिहास शुद्ध और सार्थक होगा।

बोधायन के चरित पर लेखनी उठाने का साहस तो मैं अभी तक नहीं कर सका पर आचार्य विष्णुगुप्त की देशी दृष्टि और देशी मन का चित्रण मेरे पिछले दो नाटकों में हो चुका है। यवन आक्रान्ता अलिकसुन्दर के आक्रमण की कहानी 'वितस्ता की लहरें' में आ गयी थी पर उसके बाद उसी के सेनापति शैलूष (सिल्यूकस) ने फिर अपरान्त की अधिक भूमि अपने अधिकार में कर ली और पूरे भारत को जीतकर पूर्व समुद्र तक पहुँचने का सपना वह भी वैसे ही देखने लगा जैसे सपने में सिकन्दर ने सिन्धु और वितस्ता को पार किया था। शैलूष के इस आक्रमण, उसके संहार और ध्वंस के प्रतिरोध में आचार्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य को आगे कर अपने शिष्यों की मण्डली के साथ उसे भी पराजित कर भारतभूमि

से बाहर तो किया ही, भारत की सीमा निषध पर्वत तक पहुँचा दी जो भगवान् मनु के काल में थी। निषध पर्वत प्राय: ५ शती बाद फिर भारत का अन्तरान्त बना जो पाँच सौ वर्षों तक पारसीक सम्राट् क्षयार्ष (जरेक्सस) के अधिकार में जाकर फिर यवनों के अधिकार में आ चुका था। इस प्रसंग की कहानी अपने दूसरे नाटक 'धरती का हृदय' में मैं दे सका।

तीसरा यवन आक्रमण विक्रमपूर्व तीसरी शती के अन्त में यवन दत्तमित्र (डेमेट्रियस) द्वारा हुआ। महाभाष्य में इस आक्रमण की ऐतिहासिक सूचना स्वयं मुनिवर पतंजलि ने 'अरुणद् यवन: साकेतं अरुणद् यवन: मध्यमिकाम्' लिखकर दे दी है। यवन सिकन्दर और शैलूष के दो आक्रमण जिनका निराकरण आचार्य चाणक्य ने किया, धन और धरती के उन्माद में हुए थे। यवन वीरता और विद्या का आतंक इस देश में जमाने के लिए हुए थे। यवन शस्त्र और शास्त्र की प्रेरणा इन आक्रमणों में थी। पर दत्तमित्र का आक्रमण इससे सर्वथा भिन्न था। अन्तिम मौर्य सम्राट् बृहद्रथ के राजमुद्रांकित निमन्त्रण, दत्तमित्र को इस आक्रमण के लिए मिले थे। उनसे उत्साहित और निर्भय होकर दत्तमित्र ने मथुरा का संहार किया, मध्यमिका और अयोध्या को भी अग्नि की लपटों में डाल दिया। इस प्रसंग की पूरी कहानी इस नाटक में आ गयी है; उसे दुहराने की आवश्यकता यहाँ नहीं है। बृहद्रथ इस प्रसंग में कितना दोषी है, यह भी नाटक में विश्वसनीय रूप में आ गया है। बौद्धविधान का केन्द्र पाटलिपुत्र था, यहाँ का संघाराम देश और विदेश के बौद्ध-संघों का नियन्त्रण करता था। मौर्य साम्राज्य की राजनीति मन्त्रिपरिषद् में नहीं निश्चित होती थी, उसका निर्णय और निश्चय भी संघाराम का प्रधान स्थविर धर्मरक्षित करता था। राजमुद्रा इसी के अधिकार में थी। बेचारा बृहद्रथ कुछ जानता ही नहीं था कि उसकी राजमुद्रा से क्या खेल खेले जा रहे हैं।

इतिहास इस बृहद्रथ का वध पुष्यमित्र शुंग द्वारा कहता है। वायु पुराण, भागवत, विष्णु पुराण, हर्षचरित में बृहद्रथ का वध पुष्यमित्र द्वारा कहा गया है। बाणभट्ट के हर्षचरित, छठा उच्छ्वास में बृहद्रथ 'प्रतिज्ञा दुर्बल' कहा गया है। यह भी कहा गया है कि पूरी सेना के सामने सेनापति पुष्यमित्र ने इसका वध

किया था। पुष्यमित्र ने वृहद्रथ मौर्य का वध किया और महाराज पतंजलि उसी पुष्यमित्र के दो अश्वमेध यज्ञों के आचार्य बने। पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञों के आचार्य मुनिप्रवर पतंजलि बने थे जिनकी प्रशस्ति के अनेक श्लोक मेरे सुनने में आये हैं :—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन ।
योपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां, पतंजलिं प्रांजलिरानतोऽस्मि ॥

उन मुनिप्रवर पतंजलि को करबद्ध नमस्कार करता हूँ जिन्होंने योगसूत्र से चित्त के, महाभाष्य से वाणी के और वैद्यक ग्रन्थ से शरीर के मल का हरण किया। मनुष्य के इन तीन प्रधान मलों को मिटाने वाले पतंजलि पुष्यमित्र के दो अश्वमेध यज्ञों के आचार्य बने, जिनका संकेत महाभाष्य में इस रूप में है— 'पुष्यमित्रेण याजयामि।' निश्चय ही पुष्यमित्र के उस कार्य को लोक ने और पतंजलि जैसे प्रसिद्ध आचार्यों ने धर्मकार्य माना तभी यह सम्भव हो सका।

हर्षचरित में वृहद्रथ 'प्रतिज्ञादुर्बल' कहा गया है। वृहद्रथ ने वही प्रतिज्ञा की होगी जो राज्याभिषेक के अवसर पर राजा को करनी पड़ती थी। प्रतिज्ञादुर्बल और प्रजापीड़क वेणु के वध के बाद ऋषियों ने उसके पुत्र पृथु से जो प्रतिज्ञा करायी थी, वह महाभारत के शान्तिपर्व के अध्याय ५९ के इन श्लोकों में आ गयी है :—

प्रतिज्ञाञ्चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा ।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत् ॥

महा० शान्ति० ५९,१०६ ।

यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीति व्यपाश्रयः ।
तमशंकः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन ॥१०७॥

इस प्रतिज्ञा के विपरीत कर्म करनेवाला राजा असत्यसंध, असत्प्रतिज्ञ और अरक्षक कहा जाता था। ऐसे राजा के वध का अधिकार भी प्रजा को था।

अहं वो रक्षितेत्युक्त्वा यो न रक्षति भूमिपः ।
स संहत्यः निहंतव्यः श्वेव सोन्मादमातुरः ॥

नीति-ग्रन्थों में इस प्रसंग के उदाहरण अनेक हैं। महाभारत के अनुसार

नहुष, सुदास, सुमुख और निमि भी अरक्षक राजा थे, इनकी गति भी प्रजा ने वही की जो वेणु की हुई थी।

सेनापति पुष्यमित्र ने वृहद्रथ का वध, उस समय की प्रजा और आचार्यों की आज्ञा से राजनीति की मर्यादा की रक्षा के लिए सम्भव है किया हो, पर इस नाटक में हत्या का यह प्रसंग बचा लिया गया है। नाट्यशास्त्र के अनुसार रंगमंच पर वध या युद्ध दिखाया नहीं जा सकता। इन सिद्धान्तों की रक्षाभर मैंने की है। वध के भी अनेक प्रकार कहे गये हैं। महाभारत में अर्जुन ने भी धर्मराज युधिष्ठिर का वध किया है। कृष्ण की बुद्धि से अर्जुन की प्रतिज्ञा भी रह गयी है और युधिष्ठिर के प्राण भी। अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि जो कोई उनसे गाण्डीव धनुष धरती पर रख देने को कहेगा उसका वे अवश्य वध करेंगे। कर्ण ने युद्ध में युधिष्ठिर को अत्यन्त त्रस्त और अपमानित कर दिया। वे प्राण लेकर शिविर में भाग आये। उनके सन्तोष के लिए अर्जुन भी उसी शिविर में चले गये। युधिष्ठिर पूछ बैठे—"कर्ण को मार आये"? उनसे 'अभी नहीं' सुनकर युधिष्ठिर आपे से बाहर हो गये और बोल पड़े—"तब तुम्हारा धनुष शृङ्गार के लिए है, इसे धरती पर धर दो"। अपनी प्रतिज्ञा के आवेश में अग्रज के वध लिए अर्जुन ने खड्ग खींच लिया। कृष्ण ने समझाया, गुरुजन और श्रेष्ठ का वध उसे शब्दों से अपमानित कर देना है। धर्मराज की निन्दा शब्दों से करो, उनका अनादर करो, यही उनका वध होगा और इस रूप में उनका वध कर अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा कर लो। अर्जुन ने यही किया और इस रूप में धर्मराज का वध भी हो गया और अर्जुन की प्रतिज्ञा भी रह गयी।

सम्भव है, वृहद्रथ का अनादर कर, उसे राज्यच्युत कर पुष्यमित्र ने उसके वध जैसा कार्य किया हो। इस नाटक में बृहद्रथ स्वयं राजमुकुट, राजकीय वस्त्र आदि वैसे ही स्वेच्छा से छोड़ देता है जैसे साँप अपनी केंचुल छोड़ देता है। राजमुकुट आदि ग्रहण करने का जब उससे आग्रह होता है तब वह यही कहता है कि "छोड़ी हुई केंचुल सर्प फिर नहीं ग्रहण करता"। नाटक के अन्त में क्षत्रिय जन्म सार्थक करने के लिए बृहद्रथ पुष्यमित्र से द्वन्द्व युद्ध का प्रस्ताव करता है। युद्ध का यह प्रस्ताव भविष्य के लिए छोड़ दिया जाता है। बृहद्रथ ने पुष्य-

मित्र से द्वन्द्व युद्ध का हठ यदि बाद में किया होगा तो उस युद्ध के परिणाम-स्वरूप उसकी मृत्यु पुष्यमित्र के हाथ हुई होगी और यही मृत्यु पुष्यमित्र के द्वारा उसका वध कही गयी होगी। यह नाटक इतिहास की सिद्धि के लिए नहीं, कवि-कर्म की सिद्धि के लिए लिखा गया है। इतिहास के घटना-चक्र में न पड़कर कल्पना की संभावनाओं में त्रिवर्ग और विभिन्न रसों का स्वाद दिया गया है। इस विदेशी युगबोध के युग में भी मैं रसात्मक और त्रिवर्ग चित्रण ही लेखनी की सार्थकता मानता हूँ। युगबोध जैसे अनेक भ्रामक शब्द इन दिनों हिन्दी में चल गये हैं जो विदेशी शब्दों के अनुवाद मात्र हैं। ऐसी दृष्टि युगबोध को इसलिए नहीं मानेगी कि वह सदा से अखण्ड कालबोध मानती आयी है। ज्योतिष का ही तत्त्वदर्शन आयुर्वेद में भी है, वहीं साहित्य भी पहुँचता रहा है। ज्योतिष-ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के प्रथम श्लोक तक ही व्यास, वाल्मीकि, कालिदास और तुलसीदास की आस्था भी पहुँची है :—

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने।

समस्त-जगदाधार-मूर्तये ब्रह्मणे नमः॥

बिना वैज्ञानिक प्रवृत्ति के राष्ट्र के भौतिक विकास में बाधा पड़ेगी, राष्ट्रीय-एकता का अभाव भी यही करेगा। भावात्मक समन्वय और देश-प्रेम की कमी का प्रभाव भी यही होगा। देश के धन की हानि राष्ट्र के अर्थ की हानि है। विदेशी शब्दों के ऐसे अनुवाद हमारे अभाग्य से इस देश में अब चल गये हैं पर उनका जो लक्ष्य हैं उसी के लिए व्यास, वाल्मीकि, कालिदास की लेखनी उठी थी। हमारे ये तत्त्वदर्शी कवि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार शब्दों से जो काम लेते थे वही काम ये शब्द भी दे रहे हैं जो इस नये युग में आते हैं जो अपनी व्याप्ति में अवैज्ञानिक और कृत्रिम हैं। जितने मानवीय गुण हैं सब इन्हीं शब्दों में अपनी वैज्ञानिक व्याप्ति के साथ समा गये हैं। सदाचार और उन्नत मानवीय सुख को इस देश की 'मेधा' ने अर्थ के भीतर समेट लिया था। इसी अर्थ में वाल्मीकि ने कहा था—"रामो विग्रहवान् धर्मः" श्रीरामचन्द्र के रूप में धर्म ने ही शरीर धारण किया था। मृत्युञ्जय गांधी भी श्रीरामचन्द्र को इसी रूप में देखकर जीवन-

भर उनके परमभक्त रह गये और अन्त में उनके मुख से 'हे राम' ही निकला था। इसके बाद वे फिर कुछ बोल न सके।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥

व्यासदेव ने महाभारत की महिमा में कहा था कि हे भरतर्षभ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो इस ग्रन्थ में है वही कहीं अन्यत्र भी मिल जायेगा पर जो इसमें नहीं मिलता वह कहीं नहीं मिलेगा।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

इससे अधिक देश-प्रेम कहाँ मिलेगा? देवता गान करते हैं कि भारतभूमि धन्य है जिसमें स्वर्ग और अपवर्ग दोनों के साधक देवतुल्य हैं। 'नेशनल इन्टेग्रेशन' विदेशी शब्दों का अनुवाद यहाँ भावात्मक समन्वय कहा जा रहा है पर संस्कृत के साहित्यकार इसका लाभ कभी अर्थ शब्द से, कभी धर्म शब्द से, कभी काम और कभी मोक्ष शब्द से लेते थे। बिना इस समन्वय के इनमें कोई भी पुरुषार्थ सम्भव नहीं होगा। विदेशी शब्दों में हमारा मन विदेशी हो रहा है, अंतर यही है। इस सारी समस्या पर प्रकाश इस रचना के उद्धरणों से ही पड़ जायगा।

"यह काया कर्म के लिए है भन्ते! भीख पर जीना तो दूसरे की कमायी खाना है।"

"कहें भन्ते! सूर्य किस धर्म-सम्प्रदाय को मानते हैं। वैदिक, बौद्ध, जैन किस धर्म की दीक्षा सूर्य को मिली है? उन सूर्य से किस धर्मवाले को प्राण मिलता है और किसको नहीं?"

"सूर्य प्रकृति की शक्ति है, सबके लिए समान है।"

"राजनीति भी प्रकृति की शक्ति है भन्ते! सबके लिए वह भी समान है। सूर्य सबको प्राण देता है, सबका पोषण करता है। राजनीति भी तभी सफल है जब वह सबको प्राण देने वाली बने, सबका पोषण करे। बौद्ध, जैन, ब्राह्मण सबके लिए जो गंगा बने, हिमालय बने, सूर्य बने। राजनीति में धर्म और सम्प्रदाय का प्रवेश क्षय का कारण बनता है।"

"गंगा, यमुना और सरस्वती के तीन प्रवाह का संगम प्रयाग में है....इस संस्थागार में तीन आचार्यों का संगम हो।"

इस प्रकार के अनेक उद्धरण इस रचना में हैं जो आज की स्थिति में देश के कर्म और विवेक की पताका बनेंगे।

नाटक के अन्त में मौर्य बृहद्रथ का जैसे कायाकल्प हो जाता है, वह कहता है—"राजा का कार्य प्रजापालन है भन्ते! प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म है, सद्धर्म का विस्तार करना नहीं। पूर्वजों ने प्रजा का धन इस द्यूत में लगाया। मैंने तो प्रजा के प्राण के साथ अपना प्राण भी इसी में लगा दिया।"

"परलोक में आप विश्वास नहीं करते भन्ते, पर आपका यह लोक भी गंगा और हिमालय का दान है। हिमालय न रहे तो मेघ न बरसे और गंगा न रहे तो यह भूमि ऊसर और मरुभूमि बन जाय। इस भूमि पर जितने जीवधारी हैं, गंगा सबकी माता और हिमालय सबका पिता है।"

"महाराज आप राजवेश 'धारण' करें।"

"अब देर हो गयी आचार्य, छोड़ी हुई केंचुल सर्प फिर नहीं धारण करता।"

कर्महीन भोगलिप्त बृहद्रथ का पश्चात्ताप अगाध हो उठा है तब वह स्वेच्छा से राजदण्ड, राजवस्त्र, मुकुट, मणिमाला सिंहासन पर रखकर, राज की कामना छोड़कर कलिंग सम्राट् खारवेल के मंत्री मणिभद्र के साथ तीन आचार्य—व्योमकेश, मेधातिथि, पतंजलि और पुष्यमित्र तथा पूरी सभा को विस्मित कर देता है। जो अब तक उसे पापी, अपराधी मानते थे उसके प्रति सहानुभूति में द्रवित हो उठते हैं। बुद्ध के कर्महीन धर्म को छोड़कर श्रीरामचन्द्र के पौरुषपूर्ण कर्ममार्ग की वह कामना करता है। उसके विवेक में बुद्ध निर्वाण भले दें प्रजा का पालन, लोक की रक्षा नहीं कर पायेंगे। पुष्यमित्र के साथ समर कर वह अपने क्षत्रिय धर्म को सार्थक करना चाहता है पर इसके पूर्व वह धारिणी का धर्मपिता बनकर पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को उसका दान भी करना चाहता है। उसके भीतर उन सारे गुणों का, सारी कामनाओं का उन्मेष होता है जो उसे वाल्मीकि के श्रीरामचन्द्र में मिलते हैं। उसकी इस अद्भुत स्थिति में नाटक का अन्त भी

अद्भुत रस में होता है। अन्य रस भी परिस्थितियों में बराबर आते गये हैं पर अन्त में अद्भुत रस इस रचना की विशेषता है।

देशी दृष्टिबोध यही है। यह अखण्ड कालबोध है, युग-बोध नहीं। अखण्ड से पृथक् खण्ड टिक नहीं सकता। इस दृष्टि में कुण्ठा नहीं है, अतृप्ति भी नहीं है और न है इसमें सन्ताप। हमारा पुराना साहित्य इसी दृष्टि पर टिका है। फलतः उसमें वह सब विकृतियाँ नहीं हैं, जो विदेशी साहित्य के प्रभाव में यहाँ अब आ गयी हैं। देशी मन की यह देशी दृष्टि मेरी अभी मिटी नहीं है। भारत और भारतीयता को मैं विदेशी दृष्टि से देखने की विद्या नहीं जानता। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम्' में इतिहास का जितना स्वल्प सहारा लिया, उतना ही इतिहास का सहारा इस रचना में मैंने भी लिया है। इस रचना के मार्मिक प्रसंग यदि पाठकों के मन को स्पर्श कर उन्हें गद्‌गद कर सकेंगे तभी इस रचना का श्रम सार्थक होगा।

लक्ष्मीनारायण मिश्र

शारदापीठ, गुरुधाम,
वाराणसी–५
नवरात्र, सं० २०३२

पात्र-सूची

मेघवाहन खारवेल	कलिंग नरेश
मणिभद्र	मेघवाहन का मंत्री
विरूपाक्ष	मेघवाहन का सेनापति
पुष्यमित्र	विदिशा का शुंगवंशीय ब्राह्मण, यवनविजयी
अग्निमित्र	पुष्यमित्र का किशोर पुत्र
धारिणी	सातवाहन आचार्य की पुत्री महारानी नागनिका की धर्मपुत्री
सुकेशी, सुनयना	धारिणी की यवन सहेलियाँ
मेधातिथि	अवन्ती के आचार्य
पतंजलि	अयोध्या के आचार्य
व्योमकेश	पाटलिपुत्र के आचार्य
बृहद्रथ	अन्तिम मौर्य राजा
सोमशील	बृहद्रथ का मंत्री
धर्मरक्षित	पाटलिपुत्र का संघस्थविर
विक्रमसेन	अयोध्या का मौर्य सेनापति

यवन दूत, विदेशी सार्थवाह; उपाध्याय, शिष्य; प्रतिहारी, मंत्रि-परिषद् के सदस्य, अयोध्या और पाटलिपुत्र के नागरिक आदि।

●

पहला अंक

[एक पहर दिन शेष है। चौथे पहर के घण्टे मन्दिरों में बजने लगते हैं। कलिंग के राजप्रासाद से अनेक देश के अनेक रंग के सैनिक और श्रेष्ठी सिंहद्वार के भीतर-बाहर आ-जा रहे हैं। सभा-भवन में सोने के ऊँचे सिंहासन पर, जिसकी दोनों बाहें स्वर्ण-सिंह की आकृति की हैं, मेघवाहन खारवेल सिंहमुद्रा में बैठा है। रत्न-जटित मुकुट के ठीक बीच में बड़े आकार का हीरक शंकर की तीसरी आँख की भाँति दमक रहा है। चौड़ी छाती पर स्वर्णजाल-जैसे कवच के बीच में बड़ा इन्द्रनील है। कलिंगनरेश खारवेल की भवें तनिक तिरछी हो उठी हैं। सिंहासन के ऊपर वितान में मोती की झालर के बीच में भी रत्न लगे हैं। सिंहासन के आगे नीचे पादपीठ भी रत्नजटित है। दोनों ओर दो सोने के रंग की यवनी चँवर डुला रही हैं। सिंहासन के दायें महामन्त्री मणिभद्र अपने आसन पर और बायें महासेनापति विरूपाक्ष अपने आसन पर बैठे हैं। सबके आसनों पर शस्त्र धरे हैं। मणिभद्र के आगे चित्रित आस्तरण पर बूढ़ा कायस्थ कान पर पंख की लेखनी धरे है। लेखन की अन्य सामग्री उसके आगे चिकने चमकते काठ की पिटारी में धरी है जिसे वह खोलकर देखता है। सिंहासन के आगे पारस, रोम, मिस्र और अन्य कई देशों के व्यवसायी अपनी मणिमंजूषा लिये बैठे हैं। उनके साथ ही कलिंग का कोषपति चन्दन भी बैठा है।]

खारवेल आप लोग अभी निर्णय नहीं कर सके ?

पहला व्यवसायी हमलोग नियमानुसार सम्राट् को रत्नकर चुकाने आये थे। यह नहीं जानते थे कि सम्राट् हमारी परीक्षा लेंगे।

मणिभद्र परीक्षा नहीं है श्रेष्ठी ! मेघवाहन सम्राट् ने केवल जिज्ञासा कर दी !

दूसरा — संसार का सबसे बड़ा पत्तन कौन है? सम्राट् का प्रश्न देखने में सीधा है पर इसका उत्तर बड़ा टेढ़ा होगा। हम अनेक देश के सार्थवाह अपने देश के पत्तन को सबसे बड़ा कह देंगे। अपना रूप, अपना बल, अपना देश, कौन सबसे अधिक नहीं कहता।

तीसरा — ऐसा कठिन प्रश्न किसी सम्राट् ने हमसे नहीं पूछा। हमारे शीश सभी सम्राटों के आगे झुके हैं। सुदूर पश्चिम से सुदूर पूर्व···रोम से लेकर चीन के बीच के सभी राजभवनों में हमारा प्रवेश है। सभी सम्राट् हमारा आदर करते हैं···हमें स्नेह देते हैं।

चौथा — मैं रोम का व्यवसायी हूँ सम्राट्! संसार में सबसे अधिक विलास, सबसे अधिक धन और सबसे अधिक वीरता हमारे देश में है।

खारवेल — जानता हूँ श्रेष्ठी! तुम्हारे देश की सभा में बैठे लोग धोखे से एक दूसरे की हत्या उसी सभा में कर देते हैं। सबसे अधिक धन का उपयोग वे कैसे करते हैं? सबसे अधिक विलास के नियम क्या हैं? वीरता की परिभाषा जहाँ हत्या है, वहाँ धन और विलास की परिभाषा क्या होगी श्रेष्ठी? [सब ओर हँसी गूँज जाती है।]

चौथा — जी···तो···(विस्मय और असमंजस का भाव)।

खारवेल — इस सभा में कोई किसी की अकस्मात् हत्या कर दे तो तुम क्या कहोगे? यह स्थान शान्त और शुद्ध चित्त से प्रस्तुत विषय पर अपने मत के प्रकाशन का है या असावधान प्राणी के पेट में कटार भोंक देने का। तुम्हारे देश में लोग हत्या की कला जानते हैं। वीरता की कला दूसरी होती है श्रेष्ठी! वीरता वही है भद्र, जिसमें पौरुष हो, पर हिंसा न हो!

कई स्वर — सम्राट् ठीक कह रहे हैं। धोखे से प्राण लेना वीरता नहीं है।

खारवेल समर में मारना और मरना तो धर्म है। शत्रु के हाथ से शस्त्र गिर जाय तो उस पर तब तक चोट नहीं करनी है जब तक उसके हाथ में शस्त्र न आ जाय! वीर अपने हाथ का शस्त्र शत्रु को देकर दूसरे शस्त्र से युद्ध करे। पश्चिम के यवन समर में धर्म की सिद्धि न लेकर केवल हिंसा की सिद्धि लेते हैं। मुझे यही जानना है कि हमारी ताम्रलिप्ति से बड़ा पत्तन किस देश में है?

चौथा रूप और यौवन की हाट पूछ रहे हैं सम्राट्! किस देश के किस पत्तन से रूप और यौवन का व्यवसाय अधिक होता है? किस पत्तन में ऐसी सुन्दरियाँ मिलती हैं जिनके देखते ही तरुण चक्कर खाने लगते हैं?

खारवेल (हँसकर) इस विषय में तुम्हारे पत्तन प्रसिद्ध हैं श्रेष्ठी! तुम्हीं तो (दोनों चँवर डुलाने वाली किशोरियों की ओर संकेत कर) इन दोनों को दे गये थे। इन-सा रूप हमारी धरती पर नहीं होता। यवनी दासियों से तुम लोगों ने हमारी सभी राजधानियों को भर दिया है। हमारे तरुण इनके रूप की भँवर में डूब जाते यदि शास्त्र का अंकुश न होता। दासी से ऊपर उठकर सखीभर यह बन पाती हैं। यदि कहीं पत्नी का पद इन्हें मिल पाता, धर्म के कार्य में पुरुष के बायें इन्हें आसन मिलता और इनकी सन्तानें जो औरस सन्तान बन कर.... लोक, देव, पितृकर्म का अवसर पातीं तब तो तुम लोग बिना सेना के इनके रूप, रंग और यौवन से धरती जीत लेते! (मन्त्री, सेनापति ठठाकर हँसते हैं।)

विरूपाक्ष सुनो श्रेष्ठी! सबसे बड़े पत्तन का अर्थ यह न लो।

तीसरा रोमक श्रेष्ठी इस अचरज में है कि पश्चिम के यवन सम्राट्.... रोम, यूनान, बावेरु और पारस, मिस्र के सम्राट् जो पूछते हैं उनमें दूसरी बातें होती हैं।

खारवेल कहो भद्र, क्या बातें होती हैं वे ?

चौथा नारी, रत्न और मदिरा इन तीन को छोड़कर दूसरी बात सम्राट् नहीं पूछते। सेवक ने समझा श्रीमान् भी वही पूछ रहे हैं। पूछने का ढंग दूसरा है।

खारवेल इन तीनों के गुण, उपयोग अनुभव से जाने जाते हैं श्रेष्ठी ! इनकी चर्चा बातों में नहीं चलती। जो इन तीनों की प्रकृति से परिचित होते हैं, वे इनके विषय में मौन रहते हैं। जो नहीं जानते वे शब्द से इनका सुख लेने की मूर्खता करते हैं। तुम्हारे देखे किस पत्तन में सबसे अधिक पोत आते हैं ? जाने वाले पोतों की संख्या भी कहाँ अधिक है ? किस पत्तन में जल और स्थल के साहसिक भय नहीं पहुँचा पाते हैं ?

दूसरा आपके राज्य का ताम्रलिप्ति पत्तन इस समय संसार का सबसे निरापद पत्तन है। सौ योजन दूर से ही हम समुद्री दस्युओं से निर्भय हो जाते हैं। आने-जाने वाले पोतों की संख्या भी इस समय सबसे अधिक यहीं है।

पहला व्यापार भी सबसे अधिक यहीं है। हमारे सार्थ यहाँ पहुँचते-पहुँचते खाली हो जाते हैं। यहाँ के व्यवसायी सब कुछ उतार लेते हैं। जो सामग्री हम चीन के लिए लेकर चलते हैं वह भी यहीं बिक जाती है।

खारवेल महामन्त्री !

मणिभद्र आदेश दें देव !

खारवेल इन लोगों के सार्थ में जितनी किशोरियाँ इस बार आयी हों सब चीन भेज दी जायँ। सब सार्थों की समवेत संख्या कितनी होगी श्रेष्ठी ?

चौथा बारह सौ अवश्य होगी !

खारवेल पश्चिम के यवन अपनी कन्याओं को निर्वासित क्यों कर देते

हैं श्रेष्ठी ? इस देश के किसी पत्तन में तुम्हें कभी एक कन्या भी मिली जिसे तुम दूसरे देश में ले जाकर बेच दो।

दूसरा — कभी नहीं सम्राट् !

खारवेल — तो फिर यवन यह कार्य क्यों करते हैं ?

चौथा — क्या करें ? कहाँ रखें इन्हें...

खारवेल — जिस धरती पर इनका जन्म होता है फिर वह इतनी सँकरी हो जाती है कि इन्हें रहने का ठौर नहीं देती ?

तीसरा — नित्य के युद्ध में तरुण मरते रहते हैं। फिर इनका भार कौन ढोये ?

खारवेल — इनका भार तुमलोग हमारे देश पर डाल देते हो। इसे रोकना होगा महामंत्री ! इस बार सब चीन भेज दी जायँ।

मणिभद्र — एवमस्तु देव ! पूर्वजों ने यह भूल क्यों की ? पाँच सौ वर्ष पहले भी हमारी महानगरियों में इन यवनी किशोरियों का पहुँचना सिद्ध है। अवन्ती के महासेन, कौशाम्बी के उदयन, कौशल के प्रसेनजित, मगध के अजातशत्रु के अन्तःपुर में इनका निवास साहित्य, इतिहास और लोककथा से सिद्ध है।

दूसरा — मेरे कुल में सार्थ सात पीढ़ियों से चल रहे हैं ! मंत्रिदेव, इन कन्याओं का उद्धार इसी भूमि ने किया। यदि इन्हें यहाँ दया न मिली होती तो पता नहीं इनकी जन्म की भूमि में इन पर क्या बीती होती ? इनकी भूमि जब इन्हें अन्न और वस्त्र न दे सकी तभी इस देश में इनका आना हुआ। यह भी सुन लें मन्त्री ! भरुकच्छ और चम्पा के बीच में जिनका कोई ग्राहक नहीं मिला उन्हें सार्थवाहों ने समुद्र में फेंक दिया।

[दोनों चँवर-ग्राहिणी] हाय रे ! [दोनों थर-थर काँपने लगती हैं।]

खारवेल — ऐं क्या हुआ ? (दोनों की ओर देखकर) इन दोनों को भी वहीं भेज दें मंत्री ! महाचीन यह दोनों भी चली जायँ। रोमक

श्रेष्ठी ! अपने पोत पर तुम इन दो को भी ले जाओ। तुम्हीं तो इन्हें यहाँ ले आये थे।

चौथा इनका मूल्य मैं ले चुका हूँ।

खारवेल मैं इन्हें मुक्त कर रहा हूँ और तुम्हें अवसर देता हूँ कि तुम इनका मूल्य दूसरी बार चीन में ले लो।

[दोनों चामर-ग्राहिणी फफक कर रो पड़ती हैं।]

खारवेल आर्यमंत्री ! देखें तो मुक्त करने पर दोनों इस तरह फफककर रोने लगीं। क्या नाम इनका है आर्य ?

मणिभद्र देव ने स्वयं इन दोनों को नाम दिया था।

खारवेल तब से इन्हें मैं फिर आज ही देख रहा हूँ, आर्य ! कितने वर्ष पहले तुम्हारे पोत पर आई थीं रोमक श्रेष्ठी !

चौथा तीन वर्ष हो रहे हैं सम्राट् ! इनके साथ जो यात्रा हुई थी···· बीच में एक और···यह तीसरी यात्रा है। तीन वर्ष में अभी तीन महीने कम हैं। आर्यमंत्री के सामने देव ने इन दोनों का नाम रखा था। सम्राट् भूल गये हैं पर···हाँ, वणिक् भूलता चले तब तो···व्यवसाय चौपट जाय। लिखे लेखे से अधिक हमारे मन में लिखा रहता है। सिंहासन के दायें जो है उसका नाम देव ने सुकेशी रखा था और दूसरी का सुनयना।

खारवेल (दोनों की ओर देखकर) तुम लोगों का यही नाम है ?

दोनों (भय में डोलती वाणी) हाँ····देव (दोनों सिसकने लगती हैं।)

खारवेल तीन वर्ष में कुल तीन महीने कम····इस अवधि में मैंने दोनों को फिर कभी नहीं देखा ?

सुकेशी (संयत होने की चेष्टा में) ब्राह्मण कंचुकी हमें राजसभा और अन्तःपुर के व्यवहार की शिक्षा देने लगे····

सुनयना फिर हम दोनों शातवाहन महारानी की सेवा में प्रतिष्ठान भेज दी गयीं। उनकी पुत्री कुमारी चन्द्रलेखा के साथ दो वर्ष हम कन्दुक खेलती रहीं, चित्रकारी और वीणा सीखती रहीं।

सुकेशी उन कुमारी के साथ हमें यहाँ लौटे कुल सात दिन हो रहे हैं। कंचुकी महाराज ने हमें चँवर देकर देव की सेवा में भेज दिया।

खारवेल हाँ···अब स्मरण आया। डरो मत। चीन महादेश है। वहाँ का अंशुक प्रसिद्ध है।

सुकेशी देव की शरण भाग्य से मिलकर भी छूट जायेगी? महारानी नागनिका कहती थीं आप जिसे शरण देते हैं····

(सिसक उठती है।)

सुनयना उसे इन्द्र की शरण लेने की भी इच्छा नहीं होती।

खारवेल (हँसकर) महारानी ने तुम दोनों को चतुर बना दिया है। कुमारी चन्द्रलेखा तुम दोनों को चीन जाने को कहें तब····

सुकेशी (भरे कण्ठ से) हम दोनों को वे सखी बना चुकी हैं। वे हमें छोड़ना नहीं चाहेंगी पर जब देव हमें अपनी शरण नहीं देंगे तब तो वे भी नहीं देंगी। तब तो यमराज भी हमें शरण देना नहीं चाहेगा। (दोनों सिसक उठती हैं।)

खारवेल चीन न भेजकर जो तुम्हारी जन्मभूमि भेजा जाय!

सुनयना जन्म देकर भी जिस भूमि ने हमें फेंक दिया···उस भूमि का विश्वास हम कैसे करेंगी देव! कहीं भेजने का नाम न लें। धरती का भार आप ढो रहे हैं। भारतभूमि के आप इन्द्र हैं। पहाड़ उठाने वाले को दो पत्ते भारी लगें तो उन पत्तों को समुद्र में फेंक दें। तीन वर्ष जिसके सुख के स्वर्ग में बीत गये उसे किस पाप से नरक का दुःख भोगना पड़ेगा? (दोनों धरती पर सिर टेककर सिसकने लगती हैं।)

खारवेल सुनो, उठो। तुम दोनों चाहे यहाँ रहो चाहे अपनी के सखी के साथ प्रतिष्ठान। (दोनों हाथ जोड़कर खड़ी होती हैं।) तुम्हें यहाँ ऐसा क्या मिला है जो यवन-भूमि में नहीं मिलेगा··· महाचीन में नहीं मिलेगा? निडर होकर कहो।

सुकेशी महाचीन का आहार हम सुन चुकी हैं देव ! आपके कुल में तो मांस भोजन कभी चला नहीं। कुमारी चन्द्रलेखा कभी-कभी छाग के मांस या मछली का आहार करती हैं पर वह कितनी पवित्र विधि से बनाया जाता है। चीन में तो सुनते हैं मांस जब सड़कर पोंछ वाले कीड़ों का रूप ले लेता है। नहीं कह सकूंगी देव ! स्मरण मात्र से जो मिचला रहा है। लगता है वमन होने लगेगा।

खारवेल तुम्हारे यवन भी मांस खाते हैं कुमारी ?

सुनयना आपके धर्म को छोड़कर सभी धर्म वाले मांस खाते हैं। यहाँ बोद्ध, ब्राह्मण सब खाते हैं पर चीन की तरह पूँछ वाले कीड़े नहीं""हमारे यवन भी सड़ा-गलाकर नहीं खाते देव !

सुकेशी सुनें देव ! आपकी दया इस धरती पर कहीं नहीं मिलेगी ! महारानी नागनिका और आपकी महारानी का प्रेम कहीं नहीं मिलेगा। राजकुमारी चन्द्रलेखा के साथ इस देश की सभी कुमारियों और कुमारों का विनोद कहीं नहीं मिलेगा। इस धरती के देवता यहीं बसते हैं। जिस-जिस पत्तन पर हमारा पोत रुका था देव ! सभी ठिकाने तरुण हमारे पोत पर आकर हमें देखते रहे। उनकी ओर देखने में मारे भय के देहभर में रोयें फूट जाते थे पर यहाँ के तरुण न वैसे लोलुप हैं न वैसे हिंसक !

सुनयना भाग्य के फेर से जो इस भूमि पर आ गयीं उनके पूर्वजन्म के कर्म अच्छे थे देव ! उन सबको अपनी भूमि पर उतर जाने दें। आपकी दया का विश्वास उनके भीतर बना रहे। अब आगे चाहें तो रोक लगा दें'''अब यवनश्रेष्ठी उस देश की कुमारियों को यहाँ न लाया करें।

खारवेल आर्यमंत्री ! यह यवन किशोरी अपने देश की कुमारियों को

उपस्तुति कर रही है। पूर्वजन्म तुम्हारे देश में नहीं चलता किशोरी !

सुकेशी इस देश में चलता है देव ! अब यही हमारा देश है। अगला जन्म भी हमारा यहीं होगा।

सुनयना तब हमें भी पत्नी का आसन, अधिकार और पुण्य मिलेगा देव !

मणिभद्र (हँसकर) स्वीकार कर लें देव ! इस श्रेष्ठी समुदाय को आपके आदेश से मैं विदा करूँ। इनकी रत्नमंजूषा कोषपति राजकोष में रखकर इन्हें कर देने का प्रमाणपत्र दे दें। दो दूत दो विरोधी फल के लिए आपकी अतिथिशाला में ठहरे हैं। उनके प्रति अपने व्यवहार को स्थिर करना है। कोषपति चन्दन...

चन्दन (उठकर) कहें आर्यमन्त्री !

मणिभद्र इन सार्थपतियों की रत्नमंजूषा के सोने और रत्नों का विवरण लेखाचक्र में भरकर कुल मूल्य के योग पर इनका हस्ताक्षर लेकर इन्हें विदा करो ! इनके पोत पर जो और सामग्री हो उसका कलन कर उसका कर उसी पदार्थ के अनुपात में लिये जाने की व्यवस्था करो !

चौथा श्रेष्ठी कुमारियों का कर इस वार न लिया जाय मन्त्री !

खारवेल लाभ केवल तुम्हारा रहेगा श्रेष्ठी ! या ताम्रलिप्त के व्यवसायी भी उसमें कुछ पायेंगे ?

तीसरा देव जो आदेश दें।

खारवेल पुरुष परम्परा से जो नियम चला आ रहा है श्रेष्ठी ! उसे तोड़ने का अधिकार मुझे नहीं है। आचार्य विष्णुगुप्त ने राजनीति का राजपथ जो अपने अर्थशास्त्र में बनाया उसमें राजा स्वतंत्र नहीं है। हम भी उसी शास्त्र का अनुगमन करते हैं। राजतंत्र के उस अनूठे ग्रंथ में नियम-परिवर्तन के लिए मंत्रिपरिषद् के साथ पौरपरिषद् और प्रजापरिषद् की भी अनुमति कही

गयी है। इस बार पुराने नियम का ही पालन हो। प्रति कुमारी जितने पण तुम्हें मिलें उसका दशांश तुम्हें राजकर के रूप में देना है। भविष्य में क्रमशः तुम्हें यह व्यापार कम करना है। किशोरी यवनी इस देश में दया के कारण ही स्वीकार की गयी थीं, वासना के कारण नहीं।

चौथा यही बात हमारे देश में भी कही जाती है देव ! वहाँ के लोग जानते हैं कि उनकी अत्यन्त सुन्दरी कन्या भी इस देश में पत्नी का स्थान नहीं पा सकती !

मणिभद्र आचार्य विष्णुगुप्त ने अपने शिष्य राजकुमार चन्द्रगुप्त के लिए यवन-सेनापति शैलूष की पुत्री को स्वीकार तो किया पर उसे उनकी पत्नी का अधिकार नहीं दिया !

खारवेल आर्यमंत्री ! क्या कह रहे हैं आप ? फिर यवन-हिंसा का संस्कार उस अशोक को कहाँ मिला जिसमें कलिंग राजधानी का वैसा दारुण संहार हुआ था ?

मणिभद्र इसके विचार का अवसर भी आज ही आयेगा देव ! श्रेष्ठि-समुदाय को विदा करें। (चन्दन को संकेत) (चन्दन सभी श्रेष्ठियों के साथ प्रस्थान करता है।) सुकेशी ! तुम दोनों तब तक महारानी की सेवा में चलो। [दोनों यवनी किशोरियाँ भी प्रस्थान कर जाती हैं।] महासेनापति !

विरूपाक्ष कहें आर्य !

मणिभद्र सेना के उत्तर-पश्चिम का अन्तिम स्कन्धावार कहाँ है ?

विरूपाक्ष आप जानते हैं आर्य! नर्मदा और शोण के उद्गम अमरकूट पर····

मणिभद्र वहाँ से अयोध्या कितनी दूर पड़ेगी ? सेना के स्थान और कर्म का संचालक सेनापति होता है। अतः आपसे ही पूछना है। जानकर भी मुझे इस मार्ग में आपके चलाये चलना है। आपको भी मंत्र का अधिकार तो मुझे शास्त्र देता है पर कर्म का अधिकार केवल आपका है।

विरूपाक्ष (सन्देह में) तो···अयोध्या पर कोई संकट है आर्य ? अयोध्या मगध के अधिकार में है।

खारवेल सुनो भद्र ! मगध का सम्राट् अयोध्या को विदेशी से भस्म कराकर उस पवित्र नगरी की भस्म को सरयू में बहा देना चाहता है। अभी कुछ न पूछो····आर्यमंत्री का उत्तर भर दो !

विरूपाक्ष वहाँ से अयोध्या पचास योजन के हेर-फेर में होगी ! रथ का मार्ग प्रयाग के आगे मिल सकेगा। इधर अश्व, गजसेना और पदाति जा सकेंगे।

मणिभद्र कितना समय लगेगा ? गणित में भूल न हो सेनापति !

विरूपाक्ष मेघवाहन की सेना मेघ की गति से चलती है आर्य ! आप आदेश दें।

मणिभद्र साधु भद्र ! तुमसे ऐसे ही उत्साह की आशा थी····

विरूपाक्ष दो दिन और दो रात में हमारी सेना अयोध्या के दक्षिण का छोर छू लेगी। पर हमारी सात मोक्षदायिनी पुरियों में जिसका नाम पहले आता है उस अयोध्या पर संकट कहाँ से आ रहा है ?

मणिभद्र जिससे समर करने में कोई समर्थ न हो सके····जिससे युद्ध करना ही असम्भव हो वही अयोध्या है महासेनापति ! आदि-कवि ने अयोध्या से किसी भी शत्रु का युद्ध असम्भव कहा···· उसी अयोध्या का संहार कालश्येन बनकर उसके ऊपर मँडरा रहा है।

विरूपाक्ष कवि की भाषा नहीं आर्य ! मेघवाहन सम्राट् के मंत्री की भाषा का व्यवहार करें। अयोध्या के संकट से मेरी साँस अटक रही है। भगवान् श्रीरामचन्द्र की जन्मभूमि का यह राहु कौन है ?

खारवेल तीर्थंकर ऋषभदेव की जन्मभूमि भी अयोध्या है सेनापति ! तुम्हारे पौरुष और समरकौशल की परीक्षा अयोध्या में हो रही है।

विरूपाक्ष (दायीं भुजा ऊपर उठाकर) चिन्ता नहीं सम्राट् ! देखें, यह भुजा अभी फड़कने लगी....

खारवेल देखें आर्य ! सेनापति की दायीं भुजा सचमुच फड़क रही है।

मणिभद्र तब देवता इन्हें विजय का गौरव देंगे।

विरूपाक्ष उस शत्रु का नाम बोलें आर्य ! (कठोर संकल्प की ध्वनि)

मणिभद्र यवन दत्तमित्र। आचार्य चाणक्य के समय की सन्धि तोड़कर ...मौर्य चन्द्रगुप्त की जो सन्धि शैलूष के साथ आचार्य के मंत्र से हुई थी...जिसमें निषध पर्वत भारतवर्ष की सीमा बना था, जिसके पश्चिम यवनों को रहना था और पूर्व भारत को, उस सन्धि को तोड़कर दत्तमित्र कुभा पारकर तक्षशिला पहुँचा, फिर सप्तसिन्धु देश की सात नदियाँ पारकर शूरसेन और पांचाल भूमि को दबा बैठा। इस समय वह मध्यमिका की ओर आँधी के वेग में बढ़ रहा है। इस विजय के बाद उसका लक्ष्य अयोध्या है। कालप्रिय के प्रांगण में उसके गजयूथ का मल भरा पड़ा है। मथुरा और कुशस्थली दोनों अग्नि की लपटों में समा गये हैं।

खारवेल यवन सदैव संहार करते हैं आर्य ! विजय का गौरव इनके चलाये नहीं चलता। अलिकसुन्दर ने भी समूचे पारसीक साम्राज्य का.. विश्वकर्मा के विस्मय-स्वरूप प्रासादों का, कला भवनों और असुर महान् के मन्दिरों का संहार भर किया था। विजय का संयम इन यवनों के संस्कार में नहीं है आर्य ! संहार का उन्माद इन्हें आता है पर विजय की कला यह नहीं जानते।

विरूपाक्ष दत्तमित्र नाम तो संस्कृत धातु पर चला लगता है। यवन भाषा के नाम तो बड़े टेढ़े होते हैं।

खारवेल आर्यमंत्री पहले उसके नाम का संस्कार कर रहे हैं सेनापति !

उसका भी नाम टेढ़ा है। ड्रेमेट्रियस का संस्कार दिमित्र भी हो सकेगा आर्य !

मणिभद्र दिमित्र कामचलाऊ होगा। पूरा संस्कृत नाम तो दत्तमित्र होगा। उसके नाम का संस्कार मैंने कर दिया सेनापति ! उसकी काया और उसकी सेना का संस्कार तुम करोगे।

विरूपाक्ष निस्सन्देह आर्य ! उसकी काया और सेना का संस्कार आपके आशीर्वाद और सम्राट् के प्रताप से आपका सेनापति करेगा। पर सीधे अयोध्या की राह न लेकर मध्यमिका की ओर वह क्यों मुड़ा है। यह तो रहस्य है। सम्भव है मगध की सेना से डरा हो।

खारवेल मगध उसके साथ है भद्र ! यह सब मगध की राय से हो रहा है।

विरूपाक्ष ऐं···विश्वास नहीं होता देव ! आप क्या कह रहे हैं ?

खारवेल अभी सब सिद्ध हो जाता है। सुन लो अपने कान भद्र ! मरीचि !

मरीचि (प्रवेशकर) कहें देव !

खारवेल दक्षिण की अतिथिशाला में यवन दूत के साथ जो श्रमण आचार्य ठहरे हैं उन्हें सूचना दो। अब यहाँ आकर प्रसाद देने की कृपा करें। उनके साथ का कोई तीसरा जन नहीं···केवल वही दो।

मरीचि केवल वही दो आयेंगे देव ! शस्त्र लेकर या····

खारवेल जैसे चाहें···(मरीचि का सिर झुकाकर प्रस्थान।)

मणिभद्र उन दोनों से आप कुछ नहीं बोलेंगे देव ! मंत्री का कार्य मंत्री करे। आचार्य चाणक्य अर्थशास्त्र में यही आदेश दे गये। इस प्रतिहार से भी आपको नहीं कहना था।

खारवेल भूल हो गयी आर्य ! चौदह वर्ष की आयु में ही जिसे युवराज पद मिला और चौबीस वर्ष में ही सम्राट् का मुकुट जिसके

शीश पर आ गया वह कभी-कभी उद्धत हो जाता है। आपका अंकुश भी तो अभी ढीला ही रहता आया है। गंधगज पर अंकुश सधा न रहे तो वह कब सीधे मार्ग रहेगा।

(मंत्री और सेनापति आनन्द में हँस पड़ते हैं) मंत्री का अंकुश राजा पर रहे और राजा का अंकुश····।

विरूपाक्ष सेनापति पर रहे। (तीनों हँसने लगते हैं, कुमारी चन्द्रलेखा प्रवेश करती है।)

चन्द्रलेखा (प्रसन्न मुद्रा में) तात ! आपने अभी सुना कि नहीं····

खारवेल (हाथ से संकेत कर) यहाँ आओ पुत्री ! मैंने कुछ नहीं सुना ····तुम सुनाओ क्या है ?

चन्द्रलेखा (सिंहासन के आगे खड़ी होकर) प्रमदवन के पूर्व मेघमण्डप में जो अतिथि ठहरे हैं तात !

खारवेल हाँ, कहो क्या हुआ ?

चन्द्रलेखा उनमें जो ब्राह्मण कुमार हैं·· मैंने नाम पूछा····(ओठ पर तर्जनी रखकर) ऐसे ही ओठ पर तर्जनी रखकर कहने लगे··· अपना नाम, पिता का नाम और गुरु का नाम नहीं बताया जाता। फिर मेरी ओर देखकर हँसने लगे। मेरा भय न मानें पर आपका भय तो मानते ?

खारवेल अतिथि देवता होता है पुत्री ! जिसके अतिथि को भय होता है उस गृहस्थ का भाग्य फूट जाता है।

चन्द्रलेखा 'अतिथिदेवो भव'···प्रतिष्ठान की महारानी मेरी धर्ममाता बराबर कहा करती हैं और जितने आचार्य आते हैं सबके लिए मधुपर्क बनाने का कार्य मुझे ही करना पड़ता है। अवन्ती के आचार्य मेधातिथि और अयोध्या के आचार्य पतंजलि के लिए उनके कहने से मधुपर्क मैंने बनाया था तात ! दोनों ने कहा था····उस मधुपर्क का स्वाद तो इन्द्र को भी न मिला होगा।

खारवेल दोनों इस युग के प्रसिद्ध आचार्य हैं। उन दोनों ने तुम्हें आशीर्वाद नहीं दिया था ?

चन्द्रलेखा (उत्साह में) दिया था तात !

मणिभद्र कहो प्रियदर्शिनी ! तुम्हें क्या आशीर्वाद आचार्यों से मिला था ?

चन्द्रलेखा (लजाकर) माता महारानी को पत्र लिखकर पूछ लें आर्य ! नहीं तो तात के साथ चले जायँ। आप दोनों की राह वे वर्षभर से देख रही हैं। (खारवेल की ओर देखकर) तात उन्हें वचन दे आये थे।

खारवेल वर्ष के भीतर उनका अतिथि बनने का वचन मैं दे आया था पर यहाँ कोई न कोई झंझट आती गयी पुत्री ! राजा के वचन की रक्षा तीर्थंकर करते हैं।

चन्द्रलेखा (विस्मय में) तीर्थंकर ! यह क्या होता है ?

खारवेल श्रीरामचन्द्र को प्रतिष्ठान की महारानी क्या कहती हैं ?

चन्द्रलेखा भगवान् कहती हैं।

खारवेल वैदिक महारानी जिसे भगवान् कहती हैं उसी को हम जैन तीर्थंकर कहते हैं।

चन्द्रलेखा प्रतिष्ठान में माता भगवान् की मूर्ति पर मेरे हाथ अक्षत, फूल, फल और जल और फिर कपूर की आरती कराती थीं। यहाँ भगवान् की वह सोने की पिटारी वाली मूर्ति नहीं मिली तब मैं स्नानकर वासुदेव के पत्ते पर वही सब कर लेती हूँ। उन्होंने कहा था, जहाँ मूर्ति न मिले वासुदेव के पत्ते पर पूजा कर लेना !

खारवेल आर्य ! इस कन्या के लिए सोने की पिटारी में भगवान् की मूर्ति की व्यवस्था करें।

मणिभद्र संध्या तक हो जाएगा कुमारी। कल तुम अपने भगवान् की पूजा करना।

चन्द्रलेखा अहा ! तब तो उस पिटारी को सिरहाने चौकी पर रखकर मुझे सोने का भी अवसर मिलेगा आर्य ! वहाँ माता मेरे पलंग के सिरहाने भगवान् की पिटारी रख देती थीं और मैं पूजा के ध्यान में ही सो जाती थी।

[चन्द्रलेखा प्रायः चौदह वर्ष की अत्यन्त सुन्दर अंगों वाली बाला है। देह का रंग यवनी कुमारियों-सा तपे सोने का तो नहीं है फिर भी साँवली नहीं है। चकित हरिणी-सी आँखें, लाल ओठ, पतला ललाट, घने काले लम्बे केश, कण्ठ में एकावली, कानों में त्रिकण्ट, दोनों कलाइयों में सोने के रत्न-जटित वलय हैं।]

खारवेल इस द्विजकुमार ने कुछ और पूछा पुत्री !

चन्द्रलेखा मेरा नाम पूछा ! मैंने भी नहीं बताया ! कहा, ज्योतिष से गनकर जान लो। तब (दायें हाथ से गोल आकार बनाकर) बटुए से छः अंगुल की शलाका निकालकर देखते-देखते तात ! वहाँ जो स्फटिकशिला है उसी पर मेरा चित्र खींचकर कहने लगे देख लो, तुम्हारा चित्र ठीक उतरा है कि नहीं। मैं झुककर देखने लगी तो वे फिर खिलखिलाकर हँसने लगे।

खारवेल तुम्हारा चित्र ठीक उतरा था ?

चन्द्रलेखा उतरा था तात ! मेरी आकृति जैसे काटकर रख दी गयी हो ! हँसने से जो क्रोध मेरे भीतर जगा था वह मिट गया और मुझे विस्मय हुआ। फिर उनके माँगने पर मैं वीणा ले गयी। वीणा बजाते-बजाते जैसे वे किसी दूसरे लोक में चले गये और मैं वीणा की गति में जैसे चक्कर खाने लगी। न जाने क्यों मेरी आँखों से जल बह चला।

खारवेल तेरी आँख से आँसू बह चला उसने देखा…

चन्द्रलेखा (सहमकर) हाँ तात। अपने उत्तरीय से उन्होंने पोंछ दिया।

फिर उत्तरीय देखकर बोले, "तुम्हारी आँख का काजल यहाँ लग गया। मेघवाहन सम्राट् से कहूँगा इसे धुलवा दें।"

खारवेल (हँसने लगता है, मंत्री और सेनापति हँसते हैं।) सृष्टि का श्रीगणेश यहीं से होता है आर्य ? चित्र बनता है, वीणा बजती है, उत्तरीय में काजल लगता है और फिर प्रणय की सुगन्ध दिशाओं में फैल जाती है।

मणिभद्र मेघवाहन सम्राट् भी तो कवि हैं।

खारवेल आर्य ! इस समय सेनापति पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र अकेला कवि है। विधाता की इस सृष्टि को उसने गति दी है। (चन्द्रलेखा की ओर देखकर) उस ब्राह्मण कुमार को मैं एक सौ एक नए उत्तरीय दूँगा पुत्री ! और वह उत्तरीय उससे लेकर महारानी नागनिका के पास भेज दूँगा।

चन्द्रलेखा मुझसे कोई दोष नहीं हुआ तात ! वे स्वयं उत्तरीय से मेरी आँखें पोंछने लगे। (भय से स्वर भारी हो उठता है।)

खारवेल इसीलिए मैं उसे एक सौ एक उत्तरीय दूँगा। उस उत्तरीय से अधिक मूल्य के उत्तरीय....महँगे से महँगे जो इस धरती पर मिल सकेंगे। तुम अब यहाँ आओ पुत्री !

चन्द्रलेखा माता महारानी सिंहासन पर कभी नहीं बैठतीं। कहती हैं, स्त्री को सिंहासन पर चरण नहीं धरना है। नारी सिंहासन की पूजा करे। दोनों भाई एक साथ थोड़ी देर के लिए बैठ जाते हैं। दिनभर सिंहासन सूना रहता है। उनके नीचे बैठने से मंत्री भी नीचे बैठते हैं। सेनापति और दूसरे अधिकारी भी...

खारवेल (पिता पुत्री को अपने आगे सिंहासन पर बैठाता है।) पुत्री ! महारानी मुझे तुम्हारा धर्मपिता बना चुकी हैं।

चन्द्रलेखा सो तो सुना है तात ! (नेपथ्य में आनेवालों की ध्वनि)

खारवेल बिना किसी सोच-विचार के आ जाओ। मेरी आज्ञा का उल्लंघन न करो।

चन्द्रलेखा (सिंहासन के आगे बैठती है; खारवेल उसका सिर सूँघता है।) माता महारानी आपकी आज्ञा नहीं टालेंगी तात ! मैं तो फिर…

खारवेल उन्हें मैं माता मानता हूँ प्रियदर्शिनी ! उनकी आज्ञा की कामना करता हूँ। मैं उन्हें आज्ञा नहीं दे सकता। पुत्र कब माता को आज्ञा देता है।

[यवन दूत के साथ बौद्ध आचार्य का प्रवेश]

मणिभद्र (उठकर अपनी सीध में भद्रपीठ की ओर संकेतकर) आप यहाँ बैठें भन्ते ! दूत तुम निवेदन करो।

[बौद्ध श्रमण मणिभद्र के सामने भद्रपीठ पर बैठता है। यवन दूत की आँखें जैसे चन्द्रलेखा पर टिक जाती हैं।] आपके सत्कार में कोई त्रुटि तो नहीं रही भन्ते ? यात्रा की थकान में आहार भी न रुचा होगा। सेवक ने तेल से आपके शरीर की सेवा तो की ? भोजन की सामग्री स्वादिष्ट थी न ? आप का…भन्ते ! किस नाम से पहचाने जाते हैं। आपके साथी यवन दूत का नाम क्या है ?

बौद्धश्रमण दर्शन के सूर्य और तर्क में सदैव विजयी भदन्त नागसेन का नाम आपने सुना होगा। मैं उन्हीं महाभाग का अनुज धर्मसेन हूँ। पाटलि बिहार के प्रधान संघस्थविर धर्मरक्षित का सहायक पिछले बीस वर्ष रहा, अब कालप्रिय बिहार का संघस्थविर हूँ। सामने खड़े दूत सम्राट् दिमित्र के उपमन्त्री मेगस्थनीज हैं।

मणिभद्र इस नाम का यवन राजदूत तो शैलूष की कन्या के साथ सम्राट् चन्द्रगुप्त की सभा में कई वर्ष रहा।

मेगस्थनीज शैलूष……कौन था यह……(उत्सुक मुद्रा)

मणिभद्र सिल्यूकस नेकेटार दूत…! इसी ने युद्ध में अपनी पराजय स्वीकार कर अपनी पुत्री हेलन चन्द्रगुप्त को देकर इस देश की पश्चिमी

सीमा निषध की पर्वतरेखा को माना था। तुम लोगों के नाम बड़े टेढ़े होते हैं। हेलन का नाम आचार्य विष्णुगुप्त ने हेम-माला किया और उसके पिता का नाम शैलूष। तब से इस भूमि में यही नाम चलते हैं। चन्द्रगुप्त के पोते अशोक ने तुम्हारे विजयी अलेक्जेण्डर का नाम बदलकर अपने शिलालेख में अलिकसुन्दर कर दिया। हमारे सम्राट् के कुल में तो कभी मांस खाया नहीं जाता। हड्डी तोड़ने का अभ्यास अब वैदिक धर्मवालों का भी कम है। यवनों के कटकटाते नाम हम पहले नवनीत बनाते हैं तब फिर मुख से उच्चारण कर उसका स्वाद लेते हैं। [खारवेल के साथ चन्द्रलेखा और विरूपाक्ष हँसते हैं।]

धर्मसेन हम तो इस विश्वास में आये थे कि हमारे साथ मित्र का व्यवहार होगा पर लक्षण तो....

मणिभद्र सुनें भन्ते! आपलोग देह का सारा रस सुखाकर यह चोला बनाते हैं। नहीं तो फिर परिहास से आप ऐसे क्यों भड़क रहे हैं। यवन दूत परिहास का स्वाद जानते होंगे। जहाँ परिहास नहीं होगा वहाँ मित्र भी नहीं होंगे!

खारवेल कहो दूत! मंत्री का परिहास तुम्हें भी नहीं रुचा। इस देश के नाम जैसे यवन अपनी वाणी की सुविधा में बराबर बदल देते हैं वैसे ही हमारी वाणी की सुविधा भी यहाँ यवन नाम बदल देती है। दोनों हाथों के मिलने में मित्रता है कि दोनों के दूर हो जाने में? (दोनों हाथों को मिलने में धीमी ताली बजने की ध्वनि होती है।) देखो दूत! मिले कि प्रेम से बोले। उत्तर दो दूत! हम यवन सम्राट् के सदैव मित्र हैं और सदैव मित्र रहेंगे। दोनों हाथों के मिलने में मित्रता है कि दोनों के दूर होने में; बोलो दूत!

मेगस्थनीज मिलने में देव!

खारवेल फिर हमारी मित्रता में विश्वास कर तुम अपना निवेदन करो!

मेगस्थनीज सन्देश गोपनीय है देव! केवल आपसे कहने का आदेश है।

मणिभद्र अच्छा, तब हमारे सेनापति विरूपाक्ष के साथ....संघस्थविर धर्मसेन यहाँ से टल जाँय। प्रतिहार!

प्रतिहार [प्रवेशकर] आर्य!

मणिभद्र (धर्मसेन की ओर संकेतकर) भन्ते को आदर से प्रतीक्षा कक्ष में ले चलो। अग्निपात्र में अगरु डाल देना। भन्ते जो पेय चाहें इनकी सेवा में उपस्थित करो। कादम्बरी चलेगी भन्ते!

धर्मसेन बौद्ध इस विषय में उदार हैं मंत्री। तथागत का मध्यमार्ग इसे स्वीकार करता है। सम्राट् के तीर्थंकर इसे तपस्या में बाधक मानते हैं।

मणिभद्र हाँ या ना में उत्तर दें भन्ते! यह धर्मसभा नहीं है। जैन और बौद्ध व्यवहार का अवसर भी कभी आयेगा। इस समय हमें अपने मित्र यवन सम्राट् का सन्देश सुनकर उसके अनुकूल कर्म करना है। (विरूपाक्ष से) आप तो इस समय सेना निरीक्षण को जायेंगे।

विरूपाक्ष हाँ आर्य! दिन बैठने पर मैं आपकी सेवा में आ सकूँगा। लंका का श्वेतगज अभी भलीभाँति वश में नहीं आ सका। उसकी रणशिक्षा अब जल्दी पूरी होनी चाहिए। सौ अश्वारोहियों के साथ नित्य संध्या को पाँच योजन भूमि पार करना मेरा नियम भी है।

मणिभद्र उस श्वेतगज का शिक्षण अब जल्दी पूरा हो। मेघवाहन सम्राट् से मैं प्रस्ताव करूँगा कि वह गजराज अलंकारों के साथ इनके मित्र यवन सम्राट् दत्तमित्र को दिया जाय।

धर्मसेन ऐं....यवन सम्राट् दत्तमित्र! कौन है यह मंत्री?

मणिभद्र आपके दिमित्र हमारे दत्तमित्र हैं। भारत भूमि में यवन सम्राट्

इस समय वही हैं दूसरा तो कोई है नहीं जिनपर भगवान् काल-
प्रिय की भी कृपा है। उनकी सेना में एक भी श्वेतगज नहीं है दूत !

मेगस्थनीज सब काले हैं श्वेत एक भी नहीं। हाथी श्वेत भी होता है ?

मणिभद्र हाँ भद्र ! और अकेला सौ काले हाथियों को खदेड़ भी देता है।

विरूपाक्ष तीन दिन में वह युद्ध की सभी कला को सीख लेगा आर्य ! दूत तीन दिन रुकें तो इनके साथ ही सम्राट् की सेवा में वह भेज भी दिया जाय।

मणिभद्र गंगा के जल में चाँदी के पर्वत-सा लगेगा दूत ! शत्रु के हाथी उसके आगे आँधी में पड़े पेड़ से धरती की धूल चाटेंगे।

विरूपाक्ष मुझे आदेश हो आर्य ! (सम्राट् और मंत्री को प्रमाण कर प्रस्थान।)

धर्मसेन प्रतिहार के साथ आप प्रस्थान करें मंत्री ! दूत के साथ मैं यहीं रहकर सम्राट् को यवन नरेश का संदेश दूँगा। जहाँ कहीं इनसे भूल होगी उसे···

मणिभद्र आप सँभालेंगे भन्ते ? अब मैं आपकी आज्ञा मानूँ या धर्म-शास्त्र को···

धर्मसेन क्या अर्थ मंत्री····

मणिभद्र आपका जन्म इसी देश में हुआ है। इस भूमि के विधि-व्यवहार को आप जानते हैं। संधि, विग्रह के सभी व्यवहार मंत्री करता है। इस विषय में राजा स्वाधीन नहीं है।

धर्मसेन ब्राह्मण के बनाये धर्मशास्त्र की बात कर रहे हो मंत्री ?

मणिभद्र मनु भगवान् क्षत्रिय थे।

धर्मसेन और वह विष्णुगुप्त क्या था जिसने श्रमण को गृहस्थ बनाने का चक्र चलाया था।

मणिभद्र हम उन आचार्य को मनु के बराबर नहीं मानते। फिर यह काया कर्म के लिए है भन्ते ! भीख पर जीना तो दूसरे की कमाई खाना है।

धर्मसेन जिसने छात्र, आचार्य, संन्यासी, यहाँ तक कि वेश्या तक से गुप्तचर का काम लिया था। मंत्री के पीछे भी जिसके गुप्तचर लगे रहते थे। सम्राट् के गुप्तचर तुम्हारे पीछे भी लगे होंगे। भीख के बहाने तुम श्रमण धर्म पर व्यंग्य कर रहे हो।

मणिभद्र इसका उत्तर सम्राट् दें। न लगे हों तो अब से लगें। निज के स्वार्थ में लोक धर्म का संहार न कर सकें''''गुप्तचर के भय से मुझे कुमार्ग से भय रहेगा। भीख सूर्य'''

खारवेल भन्ते जानते हैं कि मैं जैन हूँ। ब्राह्मण विष्णुगुप्त का मंत्र कलिंग पर नहीं चलता। उसी के मंत्र में अशोक ने कलिंग की धरती को श्मशान बना दिया। भन्ते धर्मसेन को पूरा सन्तोष देना है आर्यमंत्री!

मणिभद्र मैं भी यही चाहता हूँ मेघवाहन! चलो चन्दन! हम लोग चलें।

खारवेल भन्ते धर्मसेन! राजनीति न वैदिक है, न बौद्ध, न जैन। भगवान् सूर्य इस सारी सृष्टि के प्राण हैं। अनुमान करें भन्ते! किसी दिन उनका उदय एक घड़ी रुककर हो और एक घड़ी पहले ही वे अस्त हो जायँ तब बोलें'''भन्ते! तब क्या होगा? हम आप कहाँ होंगे? हमारे सम्प्रदाय कहाँ होंगे। चुप न रहें, बोलें भन्ते!

धर्मसेन (असमंजस में) तब सृष्टि का संहार होगा। हम नहीं रहेंगे'''' हमारे धर्म-सम्प्रदाय भी नहीं रहेंगे।

खारवेल आप प्रस्थान करें आर्यमंत्री! भन्ते धर्मसेन और इन सम्मानित राजदूत से मैं समझ लूँ ये लोग मुझसे क्या चाहते हैं? सम्राट् दत्तमित्र का आदेश मेरे लिए क्या है?

मणिभद्र सम्राट् की सेवा जितनी बने आप करें। भन्ते और राजदूत को पूरा संतोष दें। भन्ते धर्मसेन आपके अतिथि हैं। श्रमण का ही नहीं भन्ते! भीख तो हमारे प्रतापी सूर्य पर व्यंग्य है। सूर्य

नहीं चाहता कि यौवन में कोई भी भीख माँगे। सूर्य निरन्तर कर्म करता है।

खारवेल हाँ आर्य! आप हमारे अतिथि हैं अतः हमारे लिए देवता हैं।

मणिभद्र भन्ते धर्मसेन! आप इस समय हमारे लिए मनु और विष्णुगुप्त से बड़े हैं। आपके इस देवता रूप को मैं प्रणाम करता हूँ। (मणिभद्र के साथ चन्दन का प्रस्थान।)

खारवेल भन्ते! सूर्य के उदय अस्त में जो अन्तर पड़े तो हम सब नष्ट हो जायेंगे।

धर्मसेन हाँ सम्राट्...इस धरती का चिह्न मिट जायेगा।

खारवेल सुन रहे हो राजदूत!

मेगस्थनीज सुन ही नहीं रहा हूँ सम्राट्! इसके अनुमान से ही काँप रहा हूँ।

खारवेल (हँसकर) अब कहें भन्ते! सूर्य किस धर्म-सम्प्रदाय को मानते हैं। वैदिक, बौद्ध, जैन किस धर्म की दीक्षा सूर्य को मिली है? उन सूर्य से किस धर्मवाले को प्राण मिलता है और किसको नहीं?

धर्मसेन सूर्य प्रकृति की शक्ति है....सबके लिए समान है।

खारवेल राजनीति भी प्रकृति की शक्ति है भन्ते! सबके लिए यह भी समान है। राजनीति भी तभी सफल है जब वह सबको प्राण देनेवाली .ने, सबका पोषण करे। बौद्ध, जैन, ब्राह्मण सबके लिए जो गंगा बने, धरती बने, सूर्य बने। राजनीति में धर्म और सम्प्रदाय का प्रवेश प्रजा के क्षय का कारण बनता है। अब कहो दूत!

धर्मसेन (चन्द्रलेखा की ओर संकेतकर) यह कुमारी यहीं रहेगी महाराज!

चन्द्रलेखा मुझसे भी डर रहे हो भन्ते! (दोनों हाथ की हथेलियाँ आगे फैलाकर) देख लो भन्ते! इन अँगुलियों से धनुष, बाण, खड्ग गदा, कभी छू भी न गये। आँख से देखा है पर हाथ से कभी

छूने का अवसर भी नहीं मिला। भला मुझसे डरने की बात क्या है? राजनीति के लोग कन्या से भी डरते हैं? भन्ते का मुँह पीला पड़ रहा है महाराज! मुझे जाने दें और इनके कान में ओठ लगाकर ऐसा संवाद करें जिसे न सूर्य सुनें न वायु, धरती और आकाश के देवता भी जिसे न सुन सकें।
[चन्द्रलेखा के साथ खारवेल भी हँस पड़ते हैं।]

धर्मसेन गंभीर मंत्रणा का अवसर है महाराज! हँसी का""अवसर

खारवेल बिना हँसी के, बिना विनोद के, तो समर भी नीरस हो जाता है भन्ते! पर हाँ""आपके संघ में तो कोई उत्सव भी नहीं होता""आप न वसन्त का उत्सव मनाते हैं न शरद का। हम जैन शरद में दीपक की माला बनाते हैं और वसन्त की प्रकृति के लाल पीले रंग में अपनी देह के साथ मन को भी रँग लेते हैं।

धर्मसेन महावीर के श्रावक उत्सव मनाकर संसार का दुःख भूलना चाहते हैं पर तथागत के श्रमण इस धोखे में नहीं रहते। दुःख भूलने पर निर्वाण भी भूल जायेगा। हँसी"'विनोद, उत्सव सब मना है तथागत के धर्म-दर्शन में""

चन्द्रलेखा भोजन और पान""मांस और मदिरा वर्जित नहीं हैं भन्ते! उत्सव-विनोद वर्जित है"'फिर आपके पेट का आहार पचता कैसे है? जठर की अग्नि हँसी से न दीप्तकर आप लोग आसव, अरिष्ट, चूर्ण और अवलेह से दीप्त करते होंगे।

धर्मसेन (आँख तरेरकर) यह कन्या तो""इसकी जीभ तो"'

चन्द्रलेखा सावधान भन्ते! अपना सम्मान न भूलो और यह भी न भूलो कि मैं कौन हूँ। विनोद से भागते हो। हँसी, परिहास और उत्सव से भागते हो पर मांस से नहीं भागते। मदिरा से नहीं भागते, क्रोध से नहीं भागते, तुम्हारा साहस कि मुझे आँख तरेरो। निर्वाण लेने को तुमने यह वेश बनाया। कन्धे से एड़ी तक कौषेय कन्था""इसकी लाज भी जो तुम रख पाते भिक्षु!

[क्रोध से ओठ फड़कने लगते हैं। साँस में वेग आ जाता है जिसकी गति में उसके वक्ष के साथ सारी देह में जैसे उभार आ जाता है। यवन दूत विस्मय में उसको ओर देखता रहता है। धर्मसेन कभी नीचे धरती की ओर और कभी ऊपर आकाश की ओर देखता है।]

धर्मसेन चलो दूत, यहाँ आने में भूल हुई।

खारवेल तुम माता के पास जाओ पुत्री !

चन्द्रलेखा इस भिक्षु के भय से तात ! तेजोलेश्मा के प्रयोग को शक्ति इस भिक्षु में नहीं है कि इसके देखते ही मेरी देह से लौ फूट पड़ेगी ! इसमें वह शक्ति हो और मैं जलकर भस्म भी हो जाऊँ तब भी मैं इससे न डरूँगी !

खारवेल 'अतिथिदेवो भव' भूल गयी ? भन्ते हमारे अतिथि हैं पुत्री ! इस कन्या पर क्रोध न करें भन्ते ! जन्म देकर इसकी माँ मर गयी। जिस भगवती ने धर्ममाता बनकर इसे जिलाया उसका लाड़-दुलार इसे इतना मिला कि····

चन्द्रलेखा यह बिगड़ गयी। इतना और भी जोड़ दें तात ! पर भन्ते को इतना बोध कहाँ होगा ? लाड़-दुलार भन्ते कैसे जानेंगे कि इससे कोई बालिका कैसे बिगड़ती है ?

खारवेल तुम्हें देखकर···

[चन्द्रलेखा हँसने लगती है। दोनों हाथों से पेट दबाकर वहीं सिंहासन के आगे धरती पर बैठ जाती है। चेष्टा करने पर भी उसकी हँसी नहीं रुकती। ध्वनि के रुकने पर भी उसकी देह हिलती रहती है और फिर वह वहीं लुढ़क जाती है।]

धर्मसेन [झुककर उसके मुँह की ओर देखते हुए] ऐं····यह कन्या मूर्छित हो गयी। मेघवाहन अब इसके उपचार की चिन्ता करें। इसके स्वस्थ होने पर राजदूत निवेदन करेंगे।

खारवेल अब कोई बाधा नहीं है भन्ते ! तीर्थंकर सब मंगल करेंगे।

सम्राट् दिमित्र का आदेश कहो दूत ! जितना संक्षेप कर सको····

धर्मसेन कहीं इस कन्या का कुछ अनिष्ट हो जाय···

खारवेल तब यह दूसरा धर्म धारण करेगी भन्ते ! इस जगत् का यही चक्र है। जन्म के साथ ही मृत्यु भी आती है। कभी साथ नहीं छोड़ती। आप यह सब जानते हैं।

मेगस्थनीज इनको इस दशा में देखकर कुछ भी कहना कठिन होगा सम्राट् !

खारवेल मृत्यु साथ ही जन्म लेती है दूत ! साथ ही उठती है, बैठती है, चलती है, सोती है, खेलती और खाती है। जब कोई साथ नहीं रहता उस समय भी वह साथ रहती है। इस समय इस कन्यां के साथ उसे छोड़कर और कौन है ? सम्राट् दत्तमित्र के दूत को दृढ़ होना है। भद्र ! अब तुम अपना निवेदन करो दूसरी कोई बात नहीं। (खारवेल का स्वर दृढ़ और गंभीर हो उठता है।)

मेगस्थनीज तो····

खारवेल (अत्यधिक दृढ़ स्वर में) कहते चलो दूत ! यदि तुम्हारा सन्देश आवश्यक है तो तुरंत कहो। नहीं तो फिर महीनों यह अवसर कौन जाने न मिले।

धर्मसेन पहले पत्र दो दूत !

मेगस्थनीज (अपने सिर का टोप उतारकर पत्र निकालकर सिंहासन के निकट बढ़कर देता है।) अब जो और सूचना देव चाहें···

खारवेल (भोजपत्र खोलकर देखता है।) मैं तुम्हारे सम्राट् का मित्र हूँ दूत ! उनका आदेश मुझे स्वीकार है। रेवा के उत्तर की सारी भूमि तुम्हारे सम्राट् की रहेगी। अयोध्या और काशी पर उन्हीं का अधिकार रहेगा। सरयू और गंगा के संगम तक उनकी सेना रहेगी। उसके पूर्व की भूमि वे कृपाकर

मुझे दे रहे हैं यह भी मुझे स्वीकार है। नर्मदा के दक्षिण कलिंग आज भी है इस प्रस्ताव से भी रहेगा।

धर्मसेन पाटलिपुत्र आपके अधिकार में रहेगा सम्राट् ?

खारवेल सम्राट् दत्तमित्र के प्रस्ताव का यही अर्थ है भन्ते! पर आपकी प्रसन्नता के लिए मैं पाटलिपुत्र तक की भूमि उन्हें देने के पक्ष में हूँ। बौद्ध संघ के प्रधान स्थविर का संघाराम पाटलिपुत्र में है। आपके धर्म का संचालन वहीं से होता है जैसे सृष्टि के धर्म का संचालन सूर्यमण्डल से होता है। आप पाटलिपुत्र के अपने संघस्थविर से आदेश लेंगे। वे चाहे मेरे साथ रहें चाहे सम्राट् दत्तमित्र के। इस निर्णय के अन्तिम अधिकारी वही रहेंगे।

धर्मसेन साधु ! साधु सम्राट् ! तथागत आपका कल्याण करें।

खारवेल मैं जैन हूँ भन्ते ! ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी से मैं कल्याण की कामना करूँगा। तथागत के कल्याण का अर्थ तो मेरा श्रमण बन जाना होगा। आठ वर्ष के अपने पुत्र राहुल का कल्याण उन महापुरुष ने परिव्रज्या देकर किया। वह लाभ मैं अभी नहीं लूँगा। चौदह की आयु में युवराज बना। चौबीस में ही सम्राट् बना था। ग्यारह वर्षों से राजदण्ड (दायाँ हाथ उठाकर) इस हाथ में है। लोक-रक्षा और समर में अभी मेरे पन्द्रह-संवत्सर और बीतेंगे भन्ते! पर हाँ, सम्राट् दत्तमित्र इस विजय के अन्त में जब बौद्ध बनेंगे और जब वे राज-काज छोड़कर परिव्रज्या लेंगे तब मैं भी श्रावक मुनि बनकर सब कुछ छोड़ दूँगा। उनसे आप यह भी कह देंगे। हम दोनों एक ही समय जगत् के जंजाल को भी छोड़ेंगे। हम दोनों की मैत्री का भाव इस रूप में धन्य होकर विश्व को विस्मित करे। आप अब यही कामना करें।

धर्मसेन करूँगा मैं यही कामना। जैन खारवेल और बौद्ध दिमित्र इस

देश पर सद्धर्म की ध्वजा फहरायेंगे। मथुरा के वासुदेव और अयोध्या के रामचन्द्र पर जो आक्खानक काव्य चल पड़े हैं उनके पाखण्ड से प्रजा की रक्षा करेंगे। सम्राट् दिमित्र अग्रज से सद्धर्म की दीक्षा ले चुके हैं।

खारवेल आप जानते हैं मैं जिनका....उपासक हूँ....तीर्थंकर का उपासक हूँ....इन नामों से मुझे क्या लेना-देना है। सम्राट् दत्तमित्र इस महान् कार्य में मुझसे जो सेना चाहें...जितनी सेना, जितने हाथी चाहें मैं सब देने को तत्पर हूँ। मगध की सेना समर की कला भूल चुकी है। क्या कहा था अशोक ने कि उसके पुत्र-पौत्र भी कभी समर नहीं करेंगे ?

धर्मसेन "पुत्र प्रपौत्र मे असुनवन् विजयम् मा विजेतव्यम्" अशोक प्रियदर्शी ने यही धर्मघोष किया था सम्राट् ! सम्राट् बृहद्रथ इस कार्य में लेशमात्र बाधा नहीं देंगे। न उनकी सेना साकेत में लड़ेगी, न पाटलिपुत्र में।

मेगस्थनीज राजा की सेना नहीं लड़ेगी। हमारे सभी सेनापति यही कहते थे...सम्राट् यही कहते थे, कलिंग के महाराज भी यही कह रहे हैं और भन्ते धर्मसेन भी यही कह रहे हैं, फिर हमारी सेना से कौन संग्राम करेगा ?

खारवेल राजदूत का समाधान करें भन्ते ! मगध नरेश बृहद्रथ की सेना नहीं लड़ेगी तो लड़ेगा कौन ? अयोध्या में कौन लड़ेगा ? पाटलिपुत्र और इन नगरियों के मार्ग में कौन लड़ेगा ?

धर्मसेन पतञ्जलि और मेधातिथि जैसे आचार्यों की सेना लड़ेगी। इन दोनों के सहायक आचार्य और इनके लाखों शिष्य अवन्ती से अयोध्या तक की भूमि में भूख-प्यास से....मृत्यु के भय से मुक्त होकर हर गाँव, नगर में....नदी के हर घाट और हर मेला, हर हाट में प्रजा की सेना बना रहे हैं।

खारवेल मेधातिथि और पतञ्जलि भन्ते !

धर्मसेन हाँ, सम्राट् ! सद्धर्म के दोनों शत्रु हैं। बौद्ध और जैन धर्म को दोनों नास्तिक धर्म कहते हैं ?

खारवेल (हँसकर) मैं नास्तिक हूँ भन्ते····मेरे सभी तीर्थंकर नास्तिक हैं···सभी जैन मुनि और हमारे सभी पूर्वज नास्तिक थे। आपके तथागत और उनके सभी शिष्य नास्तिक थे। इस नास्तिक शब्द का अर्थ यह क्या करते हैं ?

धर्मसेन इनके वेद की जो निन्दा करता है वह नास्तिक है मेघवाहन···

खारवेल पर हमारे तीर्थंकर इनके वेद से सदैव उदासीन रहे। इनके वेद के निकट कभी नहीं गये। बिना निकट गये कोई निन्दा कैसे करेगा ? जीव-दया और शुद्ध कर्म····हमारे धर्म की नाव बस इन्हीं दो पतवारों से चलती है। अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी ने सभी दुःखों का कारण पूर्वजन्म के कर्मों को ही माना था। पतञ्जलि का वेद भोगपरक है, जिन धर्म वैराग्य और तपस्या स्वीकार करता है।

धर्मसेन पतञ्जलि कहेगा कलिंग नरेश का जीवन भोगपरक है, वे जीवन के व्यवहार में तो वेद के निकट हैं।

खारवेल ऐसा कहेगा भन्ते ? फिर उसकी बात का प्रतिवाद भी नहीं हो सकेगा। व्यवहार में तो मेरा जीवन भोगपरक है।

धर्मसेन आप सम्राट् हैं। आपको प्रजा का पालन और शत्रु का दमन करना है।

खारवेल राजदूत ! अयोध्या में तुम्हारे सम्राट् पतञ्जलि को बन्दी करेंगे। उसका वध न हो। मैं इस विचित्र पुरुष को देखना चाहता हूँ। उससे संवाद कर देखना है वह कितने पानी में है। संध्या समय तुम्हारे सम्राट् के लिए मैं पत्र दूँगा। मगध की सेना संग्राम नहीं करेगी भन्ते ! आप विश्वास करते हैं ? पहले यह कहें भन्ते ! मेरी मित्रता में आप विश्वास करते हैं ?

यवन सम्राट् दत्तमित्र, मित्र रूप में (दायाँ हाथ आगे बढ़ाकर) मेरा हाथ पकड़ने को तत्पर हैं ?

धर्मसेन सद्धर्म की शपथ लेकर कह रहा हूँ सम्राट् ! आपको मित्र न बनाना होता तो अब तक उज्जयिनी में महाकाल का मन्दिर रसातल में चला गया होगा। अयोध्या के शिव और विष्णु के मन्दिर भी लुप्त हो चुके होते। आपकी सेना का आतंक सिन्धु के पार...कुभा के पार निषध पर्वत के शिखर पर खड़े वृक्षों को कँपाता है। यवन सम्राट् दत्तमित्र आपको अपना मित्र बनाकर बौद्ध और जैन दोनों धर्मों के रक्षक बनना चाहते हैं।

खारवेल मगध-नरेश उनके मित्र बन चुके हैं। उनकी सेना प्रतिरोध नहीं करेगी कैसे मान लें ? जिस चन्द्रगुप्त ने भारत की पश्चिमी सीमा का ध्वज निषध पर्वत के शिखर पर फहराया उसी का वंशज बृहद्रथ दत्तमित्र की सेना का स्वागत करेगा ? इसलिए पूछ रहा हूँ भन्ते ! कि जब मैंने उनको मित्र बनाया तो यदि आवश्यक हो तो पाटलिपुत्र को भी गंगा की धार में बहा दूँ। (खारवेल की मुद्रा क्रोध और दृढ़ संकल्प की बन जाती है।)

धर्मसेन नहीं...नहीं...मेघवाहन ! देवानांप्रिय अशोक के वंशज बृहद्रथ उसी सद्धर्म को मानते हैं जिसे कलिंग के संहार पर अशोक ने स्वीकार किया था। उस धर्म में हिंसा नहीं है। वाल्मीकि के आदिकाव्य में, व्यास के पाँचवें वेद महाभारत में हिंसा है। चारों वेद, पुराण, मनु के धर्मशास्त्र में हिंसा है। निषध पर्वत के शिखर पर भारत की पश्चिम सीमा का ध्वज चन्द्रगुप्त ने नहीं, उस विकट बुद्धि ब्राह्मण ने फहराया जिसका नाम चाणक्य था। जिसने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में निर्वाण और मोक्ष का नाम एक बार भी नहीं लिया पर राजनीति के नियमों

का ऐसा जाल बिछाया जिसमें मंत्री कौन कहे, राजा भी स्वतन्त्र नहीं है।

खारवेल (हँसकर) भन्ते ! उन आचार्य ने भी कहा है अहिंसा परमधर्म है और 'मांस-भक्षणं अयुक्तं सर्वेषाम्'–मांस-भक्षण सबके लिए अनुचित है। शत्रु के गुण को भी स्वीकार करना है और गुरु के दोष की भी निन्दा करनी है, यह भी वही आचार्य कह गये। हमारा विरोध इन आचार्यों के विष्णु, शंकर और अन्य देवी-देवताओं के मन्दिरों से है। आदिकाव्य और महाभारत की कथाओं से है जिनके सुनने से लोग तथागत के निर्वाण से भाग रहे हैं या तीर्थंकर के तप और विराग से भाग रहे हैं।

धर्मसेन इनके मन्दिरों और इन आख्यानक काव्यों के संहार के लिए बौद्ध दिमित्र और जैन खारवेल को एक होकर इस देश से इनका चिह्न भी मिटा देना है।

खारवेल इसमें भी तो हिंसा होगी भन्ते ! कितने तरुण मरेंगे ? कितनी माताओं की गोद सूनी होगी ? कितनी किशोरियाँ विधवा बनेंगी। उनका नाता दूसरे पुरुषों से लगेगा फिर वर्णसंकर संतान उपजेगी।

धर्मसेन पर बौद्ध और जैनधर्म की धार जो इनके कारण रुक रही है फिर चल पड़ेगी।

खारवेल सुनें भन्ते ! निषध के शिखर पर भी इस देश की ध्वजा गाड़कर चन्द्रगुप्त जैन मुनि बन गये। वह विकट बुद्धि चाणक्य सिर पीटकर रह गया पर उन्हें रोक न सका। सबके जीवन में एक दिन ऐसा आता है जब जगत् के भोग नीरस लगते हैं और लोग उनसे मुँह मोड़कर वन में शान्ति खोजते हैं। बौद्ध परिव्रज्या कहते हैं, हम निष्क्रमण या निर्जरा कहते हैं, भन्ते ! चाणक्य, मेधातिथि और पतञ्जलि उसी को संन्यास कहते हैं। सभी नदियाँ समुद्र में जाती हैं, उनके मार्ग अनेक हैं, गन्तव्य

एक है। इस आसन पर मैं जैनधर्म के विस्तार के लिए नहीं, प्रजा-पालन के लिए बैठा हूँ। प्रजा का पालन केवल शक्ति से होता है भन्ते! विद्या की शक्ति, धन की शक्ति, सेना की शक्ति, अधिक से अधिक अपने अधिकार की धरती की शक्ति। राजधर्म का निर्वाह बल से होता है भन्ते! निर्बल राजा प्रजा का क्षय करता है। प्रजा तभी तक सुखी है जब तक राजा बली है। मगध का आधा राज्य मेरे अधिकार में रहेगा और आधा यवन सम्राट् दत्तमित्र के''''समझ रहे हो भन्ते!

धर्मसेन (काँपकर) मगध के राज्य पर आँच नहीं आयेगी मेघवाहन! मेधातिथि और पतंजलि की कमर टूटेगी। उनके वेद, उनके मन्दिर, उनके यज्ञ, उनके आख्यानक काव्य समाप्त होंगे। हमारे प्रधान संघस्थविर धर्मरक्षित ने यही निर्णय किया है। उनके प्रभाव में मगध सम्राट् ने दिमित्र को इसी कार्य के लिए निमंत्रण दिया है।

खारवेल यह कार्य तो वे स्वयं कर सकते थे।

धर्मसेन वे करते तो प्रजा में विक्षोभ होता। वेदवादी पण्डित धरती और आकाश सिर पर उठा लेते। सब ओर प्रचार करते— राजा धर्म का बाधक है

खारवेल अच्छा'''अब समझा भन्ते! इस रूप में साँप भी मरेगा और लाठी भी नहीं टूटेगी। संघस्थविर धर्मरक्षित ने दूर की सोच ली। मगध की मन्त्रिपरिषद् इस बात से अवगत है भन्ते!

धर्मसेन (मन्द हँसी) मन्त्रिपरिषद् नाम के लिए है मेघवाहन! कार्य पाटलिपुत्र के संघाराम में भन्ते धर्मरक्षित की प्रेरणा से होता है।

खारवेल मित्र दत्तमित्र ने रेवा के दक्षिण की भूमि और गंगा-सरयू के संगम के पूर्व की भूमि मुझे देने को कैसे लिख दिया?

मेगस्थनीज मगध नरेश नाम के राजा रहेंगे। व्यवस्था यही होगी।

खारवेल हम दोनों उनके परिवार का पालन-पोषण करेंगे दूत ! उनके अन्तःपुर और उनके विलास की व्यवस्था करेंगे जिससे राज्य जाने का दुःख उन्हें न हो ! पाटलिपुत्र की रक्षा और सेना का संचालन हम करेंगे ।

मेगस्थनीज हाँ सम्राट् ! भन्ते धर्मसेन के बड़े भाई नागसेन ने मथुरा में यवन सम्राट् से यह सब कहा था । नये धर्म की दीक्षा उनको भन्ते नागसेन से मिली । उन्हीं के संकेत पर मथुरा में वासुदेव और शंकर के मन्दिर गिरे । (ललाट पर तीन अँगुलियों की रेखा खींचकर) ललाट की तीन रेखा को क्या कहते हैं भन्ते !

खारवेल (हँसकर, पर भौं टेढ़ी हो उठती है ।) त्रिपुण्ड, दूत ।

मेगस्थनीज दूध सी उजली भस्म की तीन रेखाएँ जिनके ललाट पर बनी थीं···ऐसे सैकड़ों····सैकड़ों पण्डित आसन पर पूजा के बर्तन और शंख, चन्दन, धूप, कपूर छोड़कर पोथी-पत्रा समेट भाग चले । कुछ यमुना में डूब गये····कुछ पकड़े गये । उनके ग्रन्थ उनके सामने चीरकर यमुना की धार में फेंके गये । उनके बिना रेख वाले गोरे-गोरे शिष्य उत्तरीय और अन्तरीय पहनाकर हमारी सेना में नचाये गये और····

खारवेल बस करो राजदूत ! आगे क्या हुआ उसका अनुमान मैं कर लेता हूँ । अयोध्या और अवन्ती में भी सही सब होगा । काशी, गोमठ जहाँ-जहाँ ये त्रिपुण्डधारी मिलेंगे····जहाँ-जहाँ इनके व्यासपीठ होंगे सब कहीं यही होगा ।

मेगस्थनीज हाँ···सम्राट् सब कहीं····

खारवेल मुझे सम्राट् दत्तमित्र से कहाँ मिलना होगा भन्ते !

धर्मसेन सम्राट् कष्ट न करें ! केवल आप वचन दें कि यवन सम्राट् के विरोध में सेना नहीं भेजेंगे ।

खारवेल तब मैं यवन सम्राट् से धरती का दान लूँगा भन्ते ! विजय में,

भागी न बनकर केवल भोग में भागी बनूँगा ? ऐसा न करें भन्ते ! विजय में मुझे भी भागी बनने दें। [चन्द्रलेखा की देह में गति का संचार होता है। उसकी ओर देखकर] यह कन्या अब उठेगी। आप लोग अतिथिशाला में चलें। हमारा अन्तिम निर्णय आधी रात को होगा। दत्तमित्र के साथ कितनी सेना है ? मथुरा से उन्हें अवन्ती का मार्ग पकड़ना है या अयोध्या का ?

धर्मसेन (असमंजस के स्वर में) मथुरा से मध्यमिका और आपकी सूचना मिलने पर यदि आपने मित्र का हाथ बढ़ाया तो आधी सेना उत्तर और दक्षिण....अयोध्या और अवन्ती दोनों पर एक ही साथ और एक ही दिन चोट....

खारवेल मरीचि !....

मरीचि (प्रवेशकर) कहें देव...

खारवेल इन अतिथियों को इनके निवास पर ले जाओ। उत्तम पेय, गन्ध और ताम्बूल की व्यवस्था करना। आप लोग आगे चलें भन्ते ! इस कन्या की सखियों को बुलाकर यह अभी जाता है। [सुनयना और सुकेशी का प्रवेश। यवन-दूत के साथ धर्मसेन का प्रस्थान।] ब्राह्मण आचार्य से कहो अपने पुत्र के साथ दर्शन दें। [मरीचि का प्रस्थान] सुनयना और सुकेशी एक ही साथ चन्द्रकला को देखकर काँपती हुई जैसे उसे उठाने को आगे बढ़ती हैं।]

सुकेशी
सुनयना } हाय राम !

खारवेल रुकी रहो, छूना मत उसे...(दोनों सहमकर खड़ी हो जाती हैं। दोनों की देह थर-थर काँप रही है। सिंहासन के दायें लगी स्वर्ण-मंजूषा का उपरौटा खींचकर सोने की डिबिया निकालकर उसका उपरौटा निकालकर) यह लो....सुकेशी !

अपनी सखी की नाक से चार अंगुल दूर इसी तरह लिये रहो। (दायें हाथ की तीन अँगुलियों में पकड़कर) इस तरह समझ रही हो! पहले चार अंगुल दूर रहे फिर धीरे-धीरे आठ अंगुल पर सरक आये। उसका सिर तुम हथेलियों पर उठा लो सुनयना! धरती से कुल चार-छः अंगुल ऊपर""अधिक नहीं। [सुकेशी डिबिया चन्द्रलेखा की नाक की सीध में करती है। सुनयना उसका सिर हथेलियों पर ऊपर उठाती है। किशोरपुत्र अग्निमित्र के साथ प्रौढ़ पुष्यमित्र प्रवेश करते हैं। अग्निमित्र देहधारी कामदेव-सा सम्मोहक है। ऊँचा, प्रशस्त शरीर, गौरवर्ण, उन्नत ललाट, नासिका, घनी तिरछी भौंहें, लम्बी रतनार आँखें, गझिन तनी बरौनियाँ, कन्धे तक लटकता घना काला केश, वक्ष और केहुनी के आगे जगमगाता कवच, कन्धे पर धनुष, पीठ पर तूणीर, कटिबन्ध में खड्ग। पुष्यमित्र के उन्नत ललाट पर त्रिपुण्ड, शिरस्त्राण में दबे लम्बे केश, लम्बी मूँछ दोनों ओर घूमकर वृत्त बना रही है, प्रभावशाली सिंह-सी मुद्रा; वक्ष और भुजा के अग्रभाग में कवच, कन्धे पर धनुष, पीठ पर तूणीर, कटिबन्ध में खड्ग। पुत्र से तनिक ऊँची काया।]

खारवेल (सिंहासन से उतरकर दोनों हाथ जोड़कर) प्रणाम सेनापति! कार्तिकेय के साथ शंकर का स्वागत है (सेनापति के आसन की ओर संकेतकर) आप यहाँ बैठें आचार्य! कुमार तब तक मंत्री के आसन पर बैठें। (मंत्री के भद्रपीठ की ओर संकेत करता है।)

पुष्यमित्र मंत्री का आसन अत्यन्त पवित्र होता है मेघवाहन! (चन्द्रलेखा की ओर देखकर) ऐं! इस कन्या को क्या हुआ?

[अग्निमित्र चन्द्रलेखा की ओर देखकर सिहर उठता है। उसकी साँस में वेग आ जाता है, आँखें भर आती हैं। खारवेल उसकी दशा देखकर मुस्कुरा पड़ता है।]

खारवेल भारद्वाज गोत्री आचार्य पुष्यमित्र कहें इस कन्या को क्या रोग है ? भाग्य से आयुर्वेद के आदिप्रवर्तक भारद्वाज के वंशज यहाँ आ गये । इस कन्या के रोग का निदान अब वे करें ।

पुष्यमित्र इसीलिए हमारे गोत्र की गणना ब्राह्मण के ऊँचे वर्ग में नहीं है । चिकित्साजीवी ब्राह्मण हीन माना जाता है । चिकित्साजीवी भरद्वाज के वंश में आयुधजीवी द्रोणाचार्य और उसी वंश में आपका सेवक पुष्यमित्र ।

खारवेल ऐसा नहीं आचार्य ! आप मेरे गुरुतुल्य हैं । मेरा चालीस चल रहा है, आप पैंतालीस के हैं । आयु में भी पाँच वर्ष बड़े हैं ।

अग्निमित्र कुमारी ने अभिनय किया है तात ! उन्हें रोग कोई नहीं है ।

खारवेल नाड़ी देखकर कहो प्रियदर्शन !

अग्निमित्र देख चुका मैं सम्राट्, साँस का क्रम और आकृति का रंग निदान के लिए पर्याप्त है ।

[चन्द्रलेखा छींककर बैठ जाती है । पुष्यमित्र और अग्निमित्र को देखकर लज्जा और संकोच में पड़ जाती है । झटके में उठती है और सुनयना, सुकेशी के हाथ दोनों हाथों में थामकर भीतर की ओर मुड़ती है ।]

खारवेल अभी रुको पुत्री ! आचार्य पुष्यमित्र को प्रणाम करो !

चन्द्रलेखा [दोनों हाथ जोड़कर] प्रणाम आचार्य !

खारवेल उनके पुत्र प्रियदर्शन अग्निमित्र को भी !

चन्द्रलेखा ऊ'' हूँ'''इन्हें प्रणाम नहीं । पूछने पर इन्होंने अपना परिचय नहीं दिया ।

[खारवेल और पुष्यमित्र हँस पड़ते हैं ।]

अग्निमित्र अपना नाम, पिता का नाम, गुरु का नाम नहीं लिया जाता । शास्त्र का निषेध है । हमारे कण्ठ से केवल शास्त्र की वाणी निकलती है । तथागत के चेले अपनी वाणी बोलते हैं । उनके आचरण पर किसी शास्त्र का अंकुश नहीं है ।

खारवेल आचार्यपुत्र शास्त्र की वाणी बोलते हैं पुत्री ! अब तुम इन पर नहीं इनके शास्त्र पर क्रोध करो।

चन्द्रलेखा पर इनका शास्त्र तो वही है तात ! जो मेरी धर्ममाता प्रतिष्ठान की राजमाता का है। उनके शास्त्र पर मैं कैसे क्रोध करूँगी ?

पुष्यमित्र सातवाहन महारानी नागनिका इस कन्या की धर्ममाता हैं ?

खारवेल हाँ आचार्य ! इसके पिता ने महाराज शातकर्णि के दो अश्वमेध यज्ञों में प्रधान आचार्य का कार्य किया था। माता जन्म देकर ही चली गयी। पिता भी जब नहीं रहे तब महारानी नागनिका ने इसका ठीक अपनी पुत्री की भाँति पालन किया। वे ही इस प्रियदर्शिनी की धर्ममाता हैं। अब कहो पुत्री ! मूर्छा का अभिनय तुमने कहाँ सीखा है ? आचार्यपुत्र कहते हैं तुमने मूर्छा का अभिनय किया था।

चन्द्रलेखा प्रतिष्ठान के राजभवन में तात ! धर्ममाता नागनिका से मैंने गान, नृत्य, वीणा और ऐसे अनेक अभिनय की कला सीखी।

खारवेल उस यवन-दूत और बौद्ध राजनीतिज्ञ के सामने मूर्छा के अभिनय का प्रयोजन क्या था ?

चन्द्रलेखा उसने तात के मन्त्री को हटाया, सेनापति को हटाया, बेचारे कायस्थ को भी हटा दिया। मुझे हटाकर ही आपसे अपने यवन स्वामी की बात कहना चाहता था। उसकी भेद की बातें सुनने के लिए मैंने मूर्छा का अभिनय किया और सब सुन भी लिया।

खारवेल सब सुन लिया ?

चन्द्रलेखा हाँ, तात सब सुन लिया।

खारवेल कह सकोगी उसने क्या कहा ?

चन्द्रलेखा कह सकूँगी। उसके शब्दों में कहूँ या उसके कथन का सारतत्त्व अपने शब्दों में कह दूँ। उसके शब्दों में कहने में मुझे कष्ट होगा। वे शब्द ऐसे पाप से भरे हैं।

पुष्यमित्र ठीक है पुत्री, तुम अपने शब्दों में कहो।

चन्द्रलेखा आप लोग पहले आसन ग्रहण करें आचार्य ! पूर्व पीढ़ी के लोग आसन ग्रहण करें ! इस पीढ़ी के लोग खड़े रहें।

खारवेल तब तुम आचार्यपुत्र को भी खड़ा रखना चाहती हो ?

चन्द्रलेखा मैं खड़ी रहकर भन्ते धर्मसेन की बातें कहूँगी। आचार्यपुत्र भी खड़े रहें। हम दोनों समान धर्म के हैं आचार्य ! झूठ तो नहीं कह रही हूँ। आयु में हम दोनों समान धर्म के हैं। तब हमारा व्यवहार भी समान रहे।

[पुष्यमित्र और खारवेल हँस पड़ते हैं। सुनयना और सुकेशी की मन्द हँसी निकलती है। अग्निमित्र उसकी ओर देखकर आँखें घुमा लेता है।]

पुष्यमित्र आचार्य इन्द्रदत्त के पौत्र रुद्रदत्त की यह कन्या सरस्वती है। इसके जन्म से जैसे उन्हें त्रैलोक्य का राज्य मिल गया था। अस्सी वर्ष तक दैव ने उन्हें सन्तान का मुँह नहीं दिखाया था। इसके जन्म से वे अमर हो गये। सभी वेदपाठी""सभी अग्निहोत्री सन्तान के जन्म में अमरता देखते हैं। श्रुति में यही कहा गया है। जय काव्य में कृष्णद्वैपायन ने यही कहा है।

खारवेल इसीलिए इसके तात को त्रैलोक्य के लाभ से बड़ा लाभ इसका जन्म लगा। उनका नाम रुद्रदत्त था। अस्सो वर्ष बीतने पर उन्हें यह कन्या मिली ?

पुष्यमित्र आप नहीं जानते मेघवाहन !

खारवेल नहीं"उनका नाम पहले कान में नहीं पड़ा"आपसे सुना है""अस्सी वर्ष बीतने पर यह कन्या आयी आपसे सुन रहा हूँ। पर कैसे आ गयी ! इसकी माता किस वर्ष में थी ?

पुष्यमित्र इसकी माता उनकी पाँचवीं पत्नी थी। चार देवियों में कोई जननी न बन सकी। संतति की कामना में वे विवाह करते

गये। हर पत्नी पूरे एक युग बारह वर्ष की प्रतीक्षा कराती गयी। अन्त में पाँचवीं पत्नी ने विवाह के दूसरे ही वर्ष इसे उनकी गोद में देकर…वह भगवती भी इस लोक से चली गयी।

चन्द्रलेखा [सिसककर] न कहें आचार्य ! जन्म का दुःख किसी ने सहा और पालन का दुःख किसी दूसरी ने भोगा। किस अशुभ लग्न में मुझे धरती मिली ? जन्म के सातवें मास में माता गयी और तीसरे ही वर्ष तात भी चले गये। इतने पर भी माता नागनिका के दैवज्ञ मेरे भाग्य की सराहना करते हैं। जिसका आरम्भ ऐसा है तात ! उसका मध्य और अन्त कैसा होगा ?

पुष्यमित्र ग्रहण बीत जाने पर चन्द्रकला का निखार जैसे होता है। पुत्री ! तुम्हारे भाग्य का निखार हो रहा है। तभी प्रतिष्ठान की महारानी…तभी तुम्हारी धर्ममाता बन गयीं। तुम्हारी आँखें कह रही हैं, अधर, कपोल, नाक, भौंह, बरौनी और लहराते केश कह रहे हैं तुम्हारा सौभाग्य अचल है। देव तुम्हें विजयी पुत्र की माता बनायेगा। महारानी तुम्हारा हाथ सत्पात्र के हाथ में देंगी। इसमें तो सन्देह नहीं।

चन्द्रलेखा धरती का सारा धन मुझे देकर आप जगत् को दरिद्र बना रहे हैं आचार्य ! तब तो देवकुमारी आपकी इस पुत्री के भाग्य से डाह करेंगी तात !

पुष्यमित्र हाँ…हाँ…करेंगी डाह ! भगवान् बोधायन का मूल नाम उपवर्ष था। वे आचार्यवर्ष के अनुज थे। समाधि सिद्ध कर शंकर को सिद्ध करने वाले उन महाभाग के अनेक शिष्यों में तुम्हारे प्रपितामह इन्द्रदत्त, कात्यायन, पाणिनि और व्याडि जैसे चार वेदों के अवतार थे। आचार्य चाणक्य जब पाँच वर्ष के थे…एक बार उनका दर्शन कर सके। तभी से उनकी मेधा

में सूर्य का तेज समा गया। इन चार ने तो उनसे दीक्षा ली थी। चाणक्य का अर्थशास्त्र न रचा गया होता यदि भगवान् बोधायन का दर्शन उन्हें बचपन में न मिला होता। आचार्य इन्द्रदत्त की विद्या तुम्हारे पिता तक अटूट क्रम में चलती आयी।

चन्द्रलेखा वह क्रम अब टूट गया··· [उदास हो उठती है।]

खारवेल ऐसा आचार्य ! आचार्य बोधायन के दर्शन से विष्णुदत्त···

पुष्यमित्र हाँ राजन् ! महापुरुष का दर्शन भी अमोघ होता है। उस युग में आकाश में सूर्य थे और धरती पर बोधायन थे। आचार्य पतंजलि उन्हीं भगवान् का ध्यान कर योगसूत्र की रचनाकर चित्त के मल का, महाभाष्य की रचना कर वाणी के मल का और वैद्यक की रचना कर शरीर के मल का हरण कर रहे हैं। उनके शिष्य इन्द्रदत्त के कुल की कन्या के भाग्य से देवकुमारी डाह करेंगी। पद्मराग मणि के आकर में काँचमणि नहीं उपजती। उस भन्ते की बात कहो पुत्री ! उदास न बनो····उन सबकी सिद्धि ने तुम्हारे रूप में देह धारण किया है।

चन्द्रलेखा यवन दत्तमित्र की सेना विष्णु और शंकर के मन्दिरों पर टूटेगी। आदिकाव्य और महाभारत का लोप करेगी। वेद, पुराण और मनु के शास्त्र को कहीं छिपने का ठौर नहीं मिलेगा। मगध की सेना मथुरा में सोयी रही। मध्यमिका, साकेत, काशी, अवन्ती, गोमठ और पाटलिपुत्र में भी सोयी रहेगी। मेधातिथि, पतंजलि जैसे आचार्य शिष्य-मण्डली के साथ मारे जायेंगे। अशोक के वंशज ने यवनराज को इस कार्य के लिए निमंत्रण दिया है आचार्य ! पाटलिपुत्र की मंत्रिपरिषद् कुछ नहीं जानती। यह सब वहाँ के संघस्थविर

धर्मरक्षित की मंत्रणा से हो रहा है। सद्धर्म के विस्तार के लिए भारतभूमि रसातल में भेजी जा रही है।

अग्निमित्र [उद्वेग में] कुमारी सत्य कह रही हैं सम्राट् !

खारवेल शब्द-शब्द सत्य हैं प्रियदर्शन ! [गंभीर साँस और मुद्रा]

चन्द्रलेखा रेवा के दक्षिण और गंगा-सरयू के पूर्व की भूमि कलिंग नरेश पायेंगे। अयोध्या के साथ काशी के भवनों पर यवन-ध्वजा फहरायेगी। गंगा की धारा पर यवन राज्य चलेगा।

अग्निमित्र [पुष्यमित्र से] विलम्ब न करें तात ! अयोध्या की वह पवित्र भूमि जहाँ श्रीरामचन्द्र धूल में लोटकर खेले थे हमारे रक्त से सींची जाय ! हमारे स्वर्ग का द्वार वहीं खुले तात !
[चन्द्रलेखा काँपने लगती है।]

खारवेल हम जब न रहेंगे प्रियदर्शन ! आचार्य पुष्यमित्र के साथ जब मैं न रहूँगा। मेरी सेना नहीं रहेगी। सेनापति विरूपाक्ष और मंत्री मणिभद्र नहीं रहेंगे तब तुम्हें यह अवसर मिलेगा।

चन्द्रलेखा इन्हीं के साथ मुझे भी यह लाभ मिलेगा तात !

खारवेल तुम्हारी धारणाशक्ति प्रबल है पुत्री ! यवन-दूत और श्रमण की बातें तुम ठीक-ठीक कह गयी हो। तुम्हारा नाम अब से धारिणी रहेगा। इस नाम से आचार्यपुत्र के साथ तुम वह लाभ लो। चन्द्रलेखा नाम बड़ा कोमल है। उस लाभ के योग्य नहीं पड़ेगा। कहें आचार्य, यह नाम आपको रुचेगा ?

पुष्यमित्र धर्म धारण करता है मेघवाहन ! और धरती भी धारण करती है।....

मणिभद्र (विरूपाक्ष के साथ प्रवेशकर) धर्म और धरती, सनातन युग्म यही है मेघवाहन ! इस अवसर पर आचार्यपुत्र धर्म बनें और सातवाहन के कुल के आचार्य की पुत्री धरती बन जाय ! हमारे धर्म और हमारी धरती की ओर देखने का साहस शत्रु न

करें। देखें तो भस्म हो जायँ। तुम्हारा पुराना नाम छूट गया प्रियदर्शिनी ! अब तुम धारिणी हो।

पुष्यमित्र
खारवेल } इसी क्षण से धारिणी····

धारिणी उस नाम के साथ फूल की माला भी भारी लगती थी तात ! इस नाम के साथ अब मेरे कन्धे पर भी धनुष, पीठ पर तूणीर और कटिबन्ध में खड्ग रहेगा। धर्ममाता नित्य धनुष का अभ्यास करती हैं। वह लाभ अब अकेले आचार्यपुत्र का नहीं रहेगा। उसमें अब मैं भी अपना भाग लूँगी।

अग्निमित्र [विस्मय में] ओ ! हो ! तुम भी समर करोगी !

धारिणी हाँ···हाँ····करूँगी ! समर भी करूँगी और जो बन्धु आहत होकर गिर पड़ेंगे उनकी सेवा भी करूँगी। उनके घाव पर लेप दूँगी····कण्ठ में जल दूँगी।

अग्निमित्र तब कहो तुम भैरवी बनोगी !

धारिणी हम जन्म से भैरवी होती हैं भद्र···माया भी होती हैं····शक्ति भी होती हैं। बिना धरती के धर्म नहीं होता। धर्म को गति बस धरती देती है।

पुष्यमित्र बहुत सुन्दर पुत्री ! भय था मेघवाहन भारतभूमि की रक्षा को न उठें तब इस पुत्र को···दूसरा कोई पुत्र मुझे नहीं है···· धर्मयज्ञ की पहली आहुति····

खारवेल तीर्थंकर ! तीर्थंकर ! वाक्य पूरा न करें आचार्य ! आचार्य पतंजलि भारतवर्ष के सूर्य हैं। जैन खारवेल भी उन्हें गुरु मानता है। प्रतिष्ठान की ब्राह्मण महारानी को अभयदान आपके इस सेवक ने आचार्य पंतजलि और आचार्य मेधातिथि के मंत्र में दिया था। धरती, आकाश और लोकान्तिक देव जानते हैं कि उनके दोनों बालक वेदश्री और शक्तिश्री मेरे संरक्षण में हैं। शातकर्णि महाराज के साथ तो मेरा सम्बन्ध

साँप-नेवले का था। अब साँप फन फैलाकर उन्हें छाया दिये है। सेनापति !

विरूपाक्ष कहें देव !

खारवेल आर्यमंत्री स्वीकार करें तो मैं दूत को पत्र देकर दत्तमित्र को सूचित करूँ कि काशी के पूर्व गंगा के दक्षिण तट पर सिद्ध वन में मैं सेना के साथ उसका स्वागत करूँगा। दोनों सेनाएँ साथ-साथ पाटलिपुत्र पर अधिकार करेंगी।

मणिभद्र पर साकेत ?

खारवेल सेनापति विन्ध्य मेखला पार कर चरणाद्रि के सामने गंगा पार कर अयोध्या की ओर बढ़ें। प्रयाग के मार्ग से यमुना पार कर दत्तमित्र अयोध्या की ओर बढ़ेगा। मध्यमिका का संहार उद्धत यवन कर चुके होंगे। उनकी कुटिल दृष्टि अब साकेत और गोमठ के पार पाटलिपुत्र की ओर उठेगी। अवन्ती हमारी सीमा के निकट है। वे अभी हमसे दूर रहना चाहेंगे। प्रतिष्ठान का संरक्षक बन जाने के कारण धर्मरक्षित का संघ हमसे शंकित है। दत्तमित्र विश्वास कर भी लेता पर ये सद्धर्मी उसे विश्वास न करने देंगे। इनके हृदय में साकेत शूल बनकर चुभ रहा है जहाँ हर आँगन में आचार्य पंतजलि ने हवन-कुंड का विधान चला दिया है और हर घर के ऊपर आकाश में धूआँ उठता है। वेद-मंत्रों के साथ श्लोक-ध्वनि जहाँ सायं-प्रातः सुनी जाती है।

मणिभद्र मेघवाहन के विचार से मैं सहमत हूँ।

खारवेल तुम्हारा उत्तरीय कहाँ है प्रियदर्शन ! जिस पर धारिणी की आँख का काजल लग गया है।

अग्निमित्र किसने कहा....[असमंजस का भाव]

खारवेल उत्तरीय मुझे दो वत्स ! (अग्निमित्र आगे बढ़कर उत्तरीय

देता है, खोलकर देखते हुए) तुमने मिटाने की चेष्टा की है। फिर भी यहाँ झलक रहा है। सुनयना !

सुनयना जी····

खारवेल यह उत्तरीय लो। अन्तःपुर में महारानी से कहो इस उत्तरीय को अपने पास रख लें और आचार्यपुत्र को एक सौ एक कौषेय उत्तरीय देने की व्यवस्था करें।

अग्निमित्र इतने उत्तरीय क्या होंगे राजन् !

खारवेल मथुरा में आचार्यों के किशोर शिष्य नारी-वेश में सैनिकों के घेरे में नचाये गये।

अग्निमित्र तब तो और लगेंगे राजन् ! किशोर यवन उनकी सेना में कम होंगे। उनका तो क्षौर कराकर नचाना होगा। [सब लोग हँसते हैं, पर्दा गिरता है !]

दूसरा अंक

[अयोध्या नगरी के बाहर ईशान कोण पर विशाल वटवृक्ष। इस वृक्ष की जटाएँ भी धरती में प्रवेशकर जैसे वृक्ष के तने बनती गयी हैं। मुख्य तना बीच में है जिसके चारों ओर जटाओं से बने तने योग में कुल इक्कीस हो गये हैं। नीचे की विस्तृत भूमि चारों ओर की भूमि से थोड़ी ऊँची हो गयी है। बीच की ऊँची भूमि सब ओर ढालू होकर आगे की भूमि में मिलती गई है। ऊपर सघन पत्तों का वितान भी किनारों की ओर ढरकता आया है। एक पहर दिन चढ़ चुका है पर सूर्य की कोई किरण पत्तों के इस वितान को पार कर नीचे नहीं आ सकी है। वृक्ष के आगे सरयू की धारा बही जा रही है। सरयू की धारा में नावें चल रही हैं। पतवार गिरने की ध्वनि, पक्षियों की ध्वनि, जल में स्नान करने वालों की ध्वनि, सस्वर पढ़े गये संस्कृत स्तोत्र और नाव खे रहे केवटों के लोक-गीत पूरे वातावरण को प्राणवान कर रहे हैं। वृक्ष की छाया के अन्तिम छोर पर काठ की चौकी पर प्रायः चालीस वर्ष की अवस्था के आचार्य पतंजलि कन्धे पर उत्तरीय डाले सुखासन पर बैठे हैं। चौड़ी छाती और गहरी नाभि वाला उदर दिखायी पड़ रहा है। उजला यज्ञोपवीत पर्वत से उतरते प्रपात का प्रभाव उत्पन्न कर रहा है। चौकी का अगला भाग धूप में और पिछला छाया में है। आचार्य के प्रशस्त गौर ललाट पर श्वेत भस्म का त्रिपुण्ड, घनी लम्बी मूँछ; लम्बी आँखें, बरौनियाँ, ऊँची उठी नाक, कन्धे तक झूलते काले बाल जिनमें कनपटी से सटे लम्बे कान, पुष्ट कम्बुकण्ठ में भी भस्म का त्रिपुण्ड मानो भूतभावन शंकर की धारणा को सार्थक कर रहा है। दो शिष्य पीली धोती और पीले उत्तरीय में, दोनों ही प्रायः उट्ठारह वर्ष की आयु के, मन्त्र और ब्रह्मचर्य से दीप्त

चौकी के आगे दोनों ओर खड़े हैं। आचार्य पंतजलि का दायाँ हाथ कण्ठ की रुद्राक्ष माला पर पड़ा है।]

पतंजलि [आगे बायीं ओर के किशोर से] विरोचन !

विरोचन जो आचार्य !

पतंजलि शत्रु अभी आया नहीं और तुम भयभीत हो गये पुत्र। (दायीं ओर के किशोर से) वृषकेतु स्वस्थ है। इनके मन पर उद्धत विदेशी का आतंक अभी नहीं चढ़ा। इसकी आँखें धूमिल नहीं हैं, चित्त धूमिल नहीं है। न हो उस पार चले जाओ प्रियदर्शन ! अयोध्या में वही रहें जो काल से खेलने की कला जानते हों, मृत्यु को जो धर्म की धरती मानते हों।

विरोचन व्यासदेव के महाभारत में मृत्यु की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा ने मृत्यु को कर्म की धरती कहा है। वही आप भी कह रहे हैं आचार्य ?

पतंजलि और क्या कहूँगा प्रियदर्शन ! शास्त्र की वाणी ही तो विद्या है पुत्र ! देही की अपनी वाणी सदैव अविद्या है। तुम्हारी शिक्षा तभी पूरी है प्रियदर्शन ! जब तुम्हारे कण्ठ से शास्त्र बोलें। तुम्हारी वाणी जब शास्त्र-वाणी में लय हो जाय। धर्म के प्रसंग में तुम्हारे कण्ठ से मनु, पराशर, याज्ञवल्क्य बोलें। अर्थ के प्रसंग में तुम्हारे कण्ठ से आचार्य चाणक्य बोलें। काम के प्रसंग में आचार्य वात्स्यायन बोलें। तभी धर्म, अर्थ और काम का शुद्ध मार्ग तुम्हें मिलेगा। तभी तुम देव, ऋषि और पितृ-ऋण भर सकोगे। जन्म के साथ ही सब पर तीन ऋण चढ़ जाते हैं। ऋण भरने का अर्थ है मुक्त होना। इसी अर्थ में श्रुति कहती है 'सा विद्या या विमुक्तये।'

विरोचन विद्या का फल यही इतना होता है आचार्य !

पतंजलि इस फल का विस्तार विराट् है पुत्र ! जिस दिन उस विस्तार को देख लोगे फिर इस सृष्टि में देखने को कुछ शेष नहीं

रहेगा। पाणिनि के सूत्र का विस्तार तुम देखते रहे हो। शंकर के प्रसाद से किसी दिन श्रुति के इस सूत्र का विस्तार भी तुम देखोगे।

वृषकेतु श्रुति में भी सूत्र हैं आचार्य !

पतंजलि थोड़े में बहुत कहना—सूत्र का अर्थ यही है न ?

वृषकेतु हाँ आचार्य !

पतंजलि सबसे पहले श्रुति में थोड़े में बहुत देखा गया''''फिर इसी क्रम में व्यासदेव आये ब्रह्मसूत्र लेकर और इसी क्रम में पाणिनि आये, व्याकरण सूत्र लेकर। सूत्रों का दर्शन ऋषि करते हैं पुत्र ! हम लौकिक जन उनका भाष्य करें...

विरोचन आप केवल लौकिक जन हैं आचार्य ?

पतंजलि हाँ...हाँ''''केवल लौकिक जन हूँ। इस घोर कलि में ऋषि बनने का दम्भ मैं नहीं करूँगा।

विरोचन योगसूत्र का प्रणयन आप भी कर रहे हैं। सूत्र का दर्शन जो केवल ऋषि करते हैं तो योगसूत्र में तो आप भी केवल ऋषि हैं।

पतंजलि योगसूत्र जो इस योग्य हो कि कभी पण्डित उस पर भी भाष्य लिखें। लोक उसे स्वीकार करे। कालपुरुष उसे टिकने दे''''तब मैं लोकयात्रा के उस किनारे रहूँगा। कौन कहे वह पूरा भी होगा या...[गंभीर होकर दूर सरयू की धार देखते हैं।]

विरोचन ऐसा न कहें आचार्य ! आपका योगसूत्र भी पूरा होगा। [अधीर हो उठता है।]

पतंजलि यवन अलिकसुन्दर पारस के कला, कौशल, ग्रन्थों, ग्रन्थकारों, राजभवनों, हाथी-दाँत, स्फटिक और धातु की मूर्तियों का संहार कर, अग्नि की लपटों में सब कुछ स्वाहा कर वितस्ता के तट तक यही ध्वंस की आँधी लेकर आया था। यवन दत्त-मित्र ने भी मथुरा, मध्यमिका में यही सब किया है। वासुदेव

की लीलाभूमि मथुरा से विद्या का, विद्वानों का, आर्यग्रन्थों का लोप हो गया है। दोपहर तक उसकी सेना श्रीरामचन्द्र की लीला-भूमि इस अयोध्या में भी पैठ जायेगी। यहाँ भी वही सब होगा। तुम उस पार चले जाओ। तुम्हारा निर्बल मन....

विरोचन आशीर्वाद दें आचार्य! इस राष्ट्र-यज्ञ की पहली आहुति मैं बनूँ। शत्रु की सेना में आप मेरा रुद्रनृत्य देखेंगे। अपने प्राण की चिन्ता मैं नहीं...

पतंजलि [विस्मय में] तब....

विरोचन इस स्थान से न हटने का जो संकल्प आप कर बैठे....आपके न रहने पर तो इस भूमि से धर्म उठ जायेगा। वेद, विद्या, शास्त्र, पुराण, सभी उठ जायेंगे। [स्वर भारी हो उठता है।]

पतंजलि प्रजापति की आदि वेदी यह भूमि है पुत्र! भगवान् वशिष्ठ ने अग्नि का दर्शन यहीं किया था। अग्नि के प्रथम अधिकारी का पद इन्द्र ने उन्हें यहीं दिया था। वेद के अर्थ का अनुसरण मनु ने आदि धर्मशास्त्र में यहीं....उन्हीं वशिष्ठ को साक्षी बनाकर किया था। रघुवंश के प्रतापी नरेश इसी की धूल में लोटे थे। श्रीरामचन्द्र के लीला-विग्रह ने जिस भूमि को पवित्र किया। आदिकवि के काव्य का रस सबसे पहले इसी भूमि पर लोक का अमृत बना था। सुना तो यही है कि यह वटवृक्ष ऋषियों के ऋषि वशिष्ठ के समय में भी था। इसकी छाया में उन महाभाग का भी आसन लगा था।

विरोचन सो तो आप पहले भी कह चुके हैं आचार्य! भगवान् बोधायन के ग्रन्थ इसकी छाया में रचे गये थे। बालक चाणक्य को उनका दर्शन यहीं मिला था। विद्या के उन सूर्य के दर्शनमात्र से चाणक्य की मेधा में वह प्रकाश आया, राष्ट्र की शक्ति और भारत के गौरव का वह बोध आया जिसमें विदेशी यवन पीपल के पत्ते से उड़ गये। मनु के समय में जो देश की सीमा

थी वह फिर मिली''''पश्चिम में निषध पर्वत, पूर्व में स्वर्णगिरि, उत्तर में कैलास और दक्षिण में वह सेतु जिसका निर्माण राघव की सेना ने लंका में उतरने के लिए किया था।

पतंजलि (मंद हँसी) कम्बल-बुद्धि पाणिनि को शंकर का दर्शन इसी वृक्ष के नीचे भगवान् बोधायन के प्रसाद से मिला था।

वृषकेतु कम्बल-बुद्धि पाणिनि आचार्य ! अष्टाध्यायी के सूत्रों के प्रणेता ! [विस्मय में]

पतंजलि विस्मय न करो पुत्र ! पाणिनि सचमुच पहले कम्बल-बुद्धि थे। बड़े भाई आचार्यवर्ष के सभी शिष्य विद्या पढ़कर अपने घर चले गये। जो पाणिनि के साथ आये थे वे चले ही गये। पीछे आने वाले भी चले गये। पाणिनिं की मन्द बुद्धि जब कुछ न ग्रहण कर सकी। वर्ष के शिष्य आये गये। निराश होकर पाणिनि ने अन्न छोड़ दिया और किसी दिन गुरुपत्नी के आगे धरती पर सिर टेककर बालक की भाँति फूट-फूटकर रो पड़े।

विरोचन आचार्य ! यह तो कभी नहीं सुना था। पाणिनि मन्दबुद्धि थे ?

पतंजलि गुरुपत्नी ने अपने पति आचार्यवर्ष से पाणिनि के दुःख की चर्चा की। उन आचार्य ने कह दिया, पाणिनि के जन्मान्तरों के कर्म कभी उन्हें विद्या का अधिकार न देंगे। पत्नी के बहुत आग्रह और अनुनय पर आचार्यवर्ष ने पत्नी से कहा कि वे पाणिनि को साथ लेकर अपने देवर उपवर्ष से प्रार्थना करें। वे शंकर के परमभक्त हैं और बिना शंकर की कृपा के पाणिनि का कल्याण भी सम्भव नहीं है।

विरोचन शंकर की कृपा से पाणिनि की मेधा ने शब्दब्रह्म को बाँध लिया आचार्य !

पतंजलि हरे ! हरे ! बीच में टोककर बाधा न दो पुत्र ! इस समय मैं भगवान् बोधायन के साथ वैयाकरण पाणिनि का भी ध्यान

रूप देख रहा हूँ। अग्रज की पत्नी ने देवर से पाणिनि के हित में हाथ जोड़कर निवेदन किया। कुछ काल तक भगवान् उपवर्ष जिनका नाम इसी घटना के साथ बोधायन हो गया, ध्यान में लीन रहे। ध्यान टूटने पर अग्रजपत्नी की ओर देखकर बोले, "कार्य नितान्त कठिन है भगवती!" इतना सुनना था कि पाणिनि के साथ उनके अग्रज की पत्नी भी रोने लगीं। अब तो भगवान् बोधायन कठिन धर्म-संकट में पड़े। कुछ काल ध्यान में डूबे रहने पर कठोर दृष्टि से पाणिनि की ओर देखकर बोले, पूर्वजन्म के कर्मफल आँसुओं से नहीं मिटेंगे। घोर तपस्या करनी पड़ेगी। होनहार मेटने की शक्ति केवल शंकर की कृपा में है। वे प्रभु जब प्रसन्न होंगे तभी पाणिनि की बुद्धि का अन्धकार मिटेगा।

विरोचन
वृषकेतु } रोमांच हो रहा है आचार्य!

पतंजलि (बायीं बाँह पर हाथ फेरकर) मुझे भी रोमांच हो गया है पुत्र! पाणिनि की कथा आदि से अन्त तक रोमांचक है।

वृषकेतु आगे की बात कहें देव!

पतंजलि पाणिनि नित्य ब्राह्ममुहूर्त में सरयू में स्नानकर भींगी देह इसी वट के नीचे भगवान् बोधायन का दर्शन करते थे। तप, आहार, दिनचर्या के दिन और रातभर के लिए उपदेश लेकर चले जाते थे। तीन वर्ष इस विधान में कोई अन्तर नहीं आया। तीसरे वर्ष के अन्तिम ब्राह्ममुहूर्त में पाणिनि सरयू से निकलकर गुरु के निकट आ रहे थे····त्रिनेत्रधारी शंकर बायें हाथ में त्रिशूल, दायें में डमरू····अंग-अंग में विभूति का तेज और सर्प की कुण्डली···यही स्थान है पुत्र! जहाँ मैं बैठा हूँ तुम दोनों खड़े हो····यहीं पाणिनि की आँखों ने पार्वतीपति शंकर का नृत्य देखा, फिर नृत्य के अन्त में चौदह बार डमरू की ध्वनि उनके

कान में पड़ी'''देवाधिदेव भक्त पर प्रसन्न होकर हँसे थे। आनन्द का यह आघात पाणिनि सह न सके, मूर्च्छित हो गये। इस भूमि को प्रणाम करो पुत्र ! मैं नित्य इस भूमि को प्रणाम कर आसन पर आता हूँ।

[दोनों धरती पर सर टेकते हैं] अब उठो। सिन्धु से दूर पश्चिम-उत्तर पुरुषपुर से भी पश्चिम-उत्तर निषध पर्वत की तलहटी में शालातुर ग्राम है जहाँ पाणिनि ने जन्म लिया। अयोध्या की इस भूमि में इस वृक्ष के नीचे शालातुरीय का उद्धार हुआ। डमरू की चौदह ध्वनि में पाणिनि को शिवसूत्र मिले। पूर्व के पण्डित जिन पर वार्तिक लिखते आये, अपनी अल्पमति से इस गोनर्द में जन्म लेने वाले पतंजलि ने जिन पर पद की रचना की है।

विरोचन उज्जयिनी के आचार्य मेधातिथि ने कहा था आचार्य !

पतंजलि क्या''''

विरोचन वाराह ने समुद्र के तल से जैसे धरती का उद्धार किया था वैसे ही इस घोर कलि के रसातल से आपको वेद-विद्या का उद्धार करना है। आपका जीवित रहना इस भारतभूमि के लिए नितान्त आवश्यक है तात !

पतंजलि (हँसकर) इस आसन पर भी मृत्यु मेरे साथ बैठी है पुत्र ! जन्म के साथ ही आयी। साथ-साथ खेलती रही''''खाती रही'''सोती रही। चलने में साथ रही है'''उठने-बैठने में साथ रही है। अध्ययन-अध्यवसाय में साथ रही है''''ध्यान, धारणा, समाधि में साथ रही है। कब नहीं रही है साथ ? जल, थल, वन, पर्वत, जब जहाँ रहा हूँ मेरे साथ रही है। मैं इसे देखता हूँ प्रिय-दर्शन ! इसके साथ विनोद और परिहास करता रहा हूँ। अभी मुझे इसी धरती पर रहकर कर्म करना है प्रियदर्शन ! शंका मत करो।

वृषकेतु मथुरा और मध्यमिका में कितने आचार्य मारे गये ! म्लेच्छ यवन विद्या, बुद्धि, तपस्या का आदर नहीं करते। आप सब सुन चुके हैं।

पतंजलि सुन चुका हूँ। जानता हूँ यवन इस अयोध्या में पहले मुझे खोज-कर मेरा अन्त करना चाहेंगे। पर मेरा अन्त इनके वश में नहीं है। कालपुरुष जब तक न चाहेगा मेरा बाल भी बाँका नहीं होगा प्रियदर्शन !

विरोचन (हताश मुद्रा और ध्वनि) कालपुरुष क्या चाहता है कौन जाने ?

पतंजलि मेरे जीवन की चिन्ता में विवेक न छोड़ो। दैव जिसकी रक्षा करता है वह सब ओर से अरक्षित रहकर भी····महासमुद्र में गिरकर, सर्प के फण के नीचे आकर, दावाग्नि में घिरकर भी बच जाता है। पर दैव जिसकी रक्षा नहीं करता वह सोने के भवन में, जिसके वज्र कपाट बन्द हों, सब ओर से प्रहरी सजग हों, फूल की सेज पर भी नहीं बचता। परीक्षित की मृत्यु की सूचना तो आठ दिन पहले मिली ! राज-कोष, सेना सब थी···· क्यों नहीं बच गये ? कालसर्प की कुण्डली में सभी जीवधारी बँधे हैं सौम्य ! कौन किसकी रक्षा करेगा ? जब और जहाँ जिसका अन्त आ जायेगा उसे जाना ही होगा।

वृषकेतु जब और जहाँ आर्य ! अर्थात् मृत्यु का समय और स्थान दोनों पूर्वनिश्चित हैं ?

पतंजलि दोनों पूर्वनिश्चित हैं। 'विवाहं जन्ममरणं च यदा यत्र भवि-ष्यति' यह शास्त्रवाणी इसी अर्थ में है। विवाह, जन्म और मरण का समय और स्थान दोनों पूर्वनिश्चित है। मृत्यु को प्रेम करना सीखो। मृत्यु को मुक्ति मानकर चलो फिर देखो संसार के संकट कहाँ टिकते हैं।

विरोचन मृत्यु को प्रेम करना तो आत्मघात से ही सम्भव है पर आत्मघात को शास्त्र घोर पाप कहते हैं।

पतंजलि हरे! हरे! जगत् में अत्यधिक आसक्ति आत्मघात करती है पुत्र! आत्मघाती सदैव कायर होता है। वीर कभी आत्मघात नहीं करता। जो केवल अपने निमित्त जीता है उसका अन्त आत्मघात है पर जो दूसरे के लिए""लोक के निमित्त जीता है वही मृत्यु को प्रेम कर सकता है। इस समय इस भूमि से हट जाना""जिस देह का नाश किसी-न-किसी दिन ध्रुव है उसको चिन्ता में···अपने कर्तव्य से, अपने संकल्प से डिग जाना पतंजलि का आत्मघात होगा।

[साठ वर्ष की अवस्था के वृद्ध आचार्य मेधातिथि का प्रवेश। मेधातिथि दृढ़ शरीर के बलिष्ठ पुरुष हैं। सिर के लम्बे बाल आधे पके, आधे काले खिचड़ी हो रहे हैं। आँखों में तेज के साथ संकल्प, प्रशस्त ललाट पर भस्म के त्रिपुण्ड में पड़ी सिकुड़न की बनी रेखाएँ, श्वेत धोती के ऊपर कौषेय उत्तरीय, कण्ठ में आमलक जैसे रुद्राक्ष की माला। पतंजलि सहसा आसन से उतरकर उनके पैरों की ओर झुकते हैं। मेधातिथि हँसते हुए दोनों बाहों में उन्हें पकड़कर आलिंगन करते हैं, पतंजलि का झुका शीश सूँघते हैं। आँखों से कई बूँद आँसू पतंजलि के सिर पर टपक जाते हैं। उनकी काया काँपने लगती है फिर सिसक उठते हैं।]

मेधातिथि कल संध्या को···नैमिष में""भद्र! (सिसकी बढ़ जाती है, वाणी का अवरोध हो जाता है।)

पतंजलि (हँसकर) आप अधीर हो रहे हैं तात! लगता है अब हिमालय हिलेगा""सरयू सूखेगी। शिष्य अधीर हो रहे हैं""कोई बात नहीं, अभी किशोर हैं""पर जब गुरु भी अधीर हो रहे हैं तब मेरी गति कहाँ है?

मेधातिथि (सँभलकर, संयम की दृढ़ ध्वनि में) सुनो···सुनो भद्र ! मेरा अधिकार न छीनो। तुम केवल अयोध्या के नहीं, पूरी भारत-भूमि के हो। मैं केवल उज्जयिनी का नहीं, पूरी भारतभूमि का हूँ···कैलास से चलकर जिसका विस्तार रामेश्वर के भी दक्षिण उस सेतु तक है जिसका निर्माण इसी अयोध्या के परमपुरुष श्रीरामचन्द्र के संकल्प से हुआ था····जिसका विस्तार निषध पर्वत से स्वर्णगिरि तक है जिसके परे रघु के दिग्विजय का रथ चला था।

पतंजलि (हँसकर) अपने अधिकार के लिए आप बदरीवन और कैलास न जाकर लौट आये तात ! तीर्थ का संकल्प लेकर आप उज्ज-यिनी से चले····हिमवान पर चरण धरने की बात कौन कहे धरती के उस मानदण्ड का दर्शन भी आपने नहीं किया···मोक्ष का संकल्प छोड़कर लोकचक्र में फिर लौट आये तात !

मेधातिथि धर्म पर, धरती पर, जाति पर, सरस्वती पर, सरस्वती-पुत्रों और मन्दिरों पर, वेद, शास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत पर विदेशी दस्यु आक्रमण कर रहा है···पूर्वजों के संस्कार का, उनके स्वर्ग का लोप हो रहा है उस समय मोक्ष का संकल्प अधर्म है भद्र ! जाति बन्धन में पड़े और कोई एकदेही मोक्ष चाहे यह विडम्बना है। विष्णु के बदरीधाम और नटराज के कैलास से बड़े तीर्थ इस समय वे स्थान हैं जहाँ शत्रु के रक्त के साथ हमारे तरुण अपना रक्त मिला रहे हैं। अक्षय स्वर्ग का भोग वे ले रहे हैं। वसिष्ठ और बोधायन का यह आसन मुझे दो। प्रलय की वेला में इस आसन का अधिकारी मैं हूँ। मेरे न रहने पर तुम यहाँ आ जाना ! शस्त्र उठाओ। पाणिनि के सूत्र तुम्हारे धनुष की गति में नाचें। (दृढ़ संकल्प और उत्साह की वाणी)।

पतंजलि (हँसकर) बाण की नोक पर चढ़कर तात !

मेधातिथि हाँ भद्र ! जो सूत्र तुम्हारी वाणी की नोंक पर रहे हैं वे अब तुम्हारे बाण की नोंक पर उतरें। निर्वाण का लाभ शाक्यमुनि के श्रमण लें जो विरोधी बर्बर को निमंत्रण देकर इस पवित्र भूमि का संहार कर रहे हैं, जो अपने हाथ अपना लोक फूँक रहे हैं। श्रीरामचन्द्र के लोकोत्तर चरित्र को जो पाखण्ड कहते हैं। महाभारत के आख्यान जिनके कानों में खलखलाता पारा बन जाते हैं।

पतंजलि किस के निमंत्रण पर वह अधम यवन मथुरा, मध्यमिका का संहार कर इस साकेत नगरी पर चढ़ा आ रहा है ?

मेधातिथि (हँसकर) अजान बनने का अभिनय कर रहे हो ? जैसे तुम उन्हें जानते नहीं ? मनु की प्रजा का जितना संहार वे कर चुके, उनके पाप के जितने घाव हमारे राष्ट्र की काया में लगे, उससे जो घृणा तुम्हारे भीतर आ गयी है, वह उनका नाम भी तुम्हें नहीं लेने देती। उनका नाम लेने में भी तुम पाप का अनुभव करते हो।

पतंजलि किसके संकेत पर यवन इतना संहार कर रहे हैं तात ?

मेधातिथि (हँसकर) फिर वही बात ! मेरी परीक्षा ले रहे हो। पैंतालीस वर्ष का तरुण साठ वर्ष के वृद्ध की परीक्षा ले रहा है। कलि अपना काम कर रहा है ! तुम्हारा दोष नहीं।

पतंजलि (ठठाकर हँसते हुए) मैं अभी तरुण हूँ तात !

मेधातिथि तुम्हारी विद्या के आतंक में मैं तुम्हें तरुण कह गया भद्र ! नहीं तो मेरा मन तो तुम्हें अभी बालक मानता है। 'अदीनाः स्याम शरदः शतम्' सौ वर्षों तक अदीन रहने की श्रुतिवाणी मानी जाय तब तो तरुणाई कम से कम अस्सी वर्ष तक मानी ही जायेगी। तरुण अभी मैं हूँ। तुम तो अभी बालक हो, शाक्यमुनि के चेले पन्द्रह-सोलह में ही वृद्ध बनने का स्वांग करते हैं। (ओंठ के ऊपर लम्बी मूंछ पर बायें हाथ की तर्जनी फेरकर)

रेख नहीं आयी तभी दीन बनकर निर्वाण लूट लेने का विधान उनके सम्प्रदाय में है। हम वैदिक तो सौ वर्षों तक दीन बनना नहीं चाहते।

पतंजलि हमें दीन बनाने ही के लिए तो विदेशी यवन यह संहार कर रहा है।

मेधातिथि अपने घर का मार्ग उसको कौन दिखा रहा है? योगसूत्र के लेखक चित्त पर अंकुश चाहे जितना रखें....जघन्य पाप अपराध को देखकर भी वे अपना क्रोध उस भाँति पी लें जिस भाँति नीलकण्ठ ने हलाहल पी लिया था, पर इस लोक में साठ पूरे कर मैं दो टूक सत्य कहूँगा। क्रोध पीने की कला मैं नहीं जानता। चित्त पर उतना अंकुश भी नहीं रहेगा। यवन किस बल से यह संहार करता भद्र! पाटलिपुत्र के संघाराम का वह स्थविर...

पतंजलि नहीं....नहीं तात! यह सत्य अप्रिय है न कहें।

मेधातिथि कहूँगा भद्र! सौ बार....सहस्र बार....लक्ष बार कहूँगा.... भारतीय प्रजा जान जाय कि भारत का संहार कौन कर रहा है। इन विदेशियों को बुलाकर हमारे राष्ट्रीय गौरव की हत्या कौन कर रहा है? इनकी करनी इन्हें चाट जायेगी भद्र! एक दिन आयेगा जब इस भूमि पर इनका चिह्न भी नहीं रहेगा। विदेशी खड्ग से जो अपने धर्म का प्रचार कर रहे हैं। अपने स्वार्थ में जो विदेशी हिंसक के तलवे चाटते हैं। इनकी अहिंसा की नाव देशी रक्त की नदी में चल रही है। तुम नहीं सुनोगे.... धरती सुनेगी....आकाश सुनेगा...गंगा, यमुना, सरयू, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र और रेवा की लहरें सुनेंगी....पूर्व, पश्चिम, दक्षिण समुद्र सुनेंगे, विन्ध्य, हिमालय के साथ सभी कुल पर्वत सुनेंगे।

नेपथ्य में आचार्य मेधातिथि की जय....जय....जय....

नेपथ्य में आचार्य पतंजलि की जय....जय....जय....

मेधातिथि (उत्साह में) पाटलिपुत्र का संघस्थविर धर्मरक्षित इस पवित्र भूमि का राहु बना है। जिसके चलाये देशभर के संघाराम चल रहे हैं। मौर्य बृहद्रथ जिसके हाथ की कठपुतली है। इस यवन को इस दारुण संहार के लिए बृहद्रथ ने निमंत्रण दिया है। मथुरा का ध्वंस उसकी सेना देखती रही। मध्यमिका का संहार भी उसकी सेना ने वैसे ही देखा जैसे लोग नाटक देखते हैं।

नेपथ्य में बृहद्रथ को धिक्कार है। हम सजग हैं आचार्य! साकेत में यह नहीं होगा।

मेधातिथि जिन कण्ठों से यह अमृतवाणी निकली है वे दर्शन दें। [कई जन प्रवेश कर हाथ जोड़कर खड़े होते हैं।] फिर कहो अमृत-पुत्र ! साकेत में यह संहार नहीं होगा।

कई जन नहीं होगा आचार्य ! मगध की सेना हमारे साथ है। सेनापति बन्दी हैं।

पतंजलि सेनापति को किसने बन्दी किया ?

एक जन आपके शिष्यों ने, आपके भक्तों ने आचार्य ! चारों दिशाओं से तरुण भादों की सरयू की भाँति उमड़े चले आ रहे हैं। इस धरती पर आपके प्राणत्याग के संकल्प से तरुण जाग उठे हैं। उनके आचार्य के निकट कोई यवन न आ सकेगा।

पतंजलि सेनापति को बन्दी बनाने का आदेश किसने दिया ? विरोचन ! पूछो उपाध्याय मकरन्द से।

मकरन्द (प्रवेश कर) शिष्य सेवा में प्रस्तुत है आचार्य ?

पतंजलि कहो सेनापति को बन्दी किसने किया।

मकरन्द आपके इसी शिष्य ने आचार्य !

पतंजलि आचार्य विष्णुगुप्त का गौरव देना चाहते हो मुझे ?

मेधातिथि आचार्य जो अर्थशास्त्र जैसा महान् राजनीति और लोकनीति का ग्रन्थ न लिख गये होते तो तुम वह कार्य भी करते। चित्त

के संस्कार के लिए जिस मेधावी आचार्य पतंजलि ने योगसूत्र की रचना की, वाणी के संस्कार के लिए जिसने पाणिनि के सूत्रों पर महाभाष्य लिखा और काया के संस्कार के लिए जिसने वैद्यक की रचना की…चित्त, वाणी और शरीर तीनों का मल दूर कर इन तीनों को शुद्ध करने वाले मुनि-प्रवर पतंजलि को करबद्ध नमस्कार देशभर के पण्डित कर रहे हैं, वे राजनीति और लोकनीति के संस्कार के लिए चाणक्य के अर्थशास्त्र जैसा आर्षग्रन्थ भी लिखे होते। यह कार्य वे विज्ञानबुद्धि आचार्य कर गये थे अतः इस आचार्य ने उस विषय पर लेखनी नहीं उठायी। पतंजलि इस युग के आचार्य चाणक्य हैं। राष्ट्र के उत्कर्ष का जो कार्य विधाता ने उन आचार्य से कराया वही उत्कर्ष कार्य वह इन आचार्य पतंजलि से भी करा रहा है।

पतंजलि आप मुझे लज्जित कर रहे हैं आचार्य! कहाँ भगवान् विष्णुगुप्त और कहाँ मैं…सूर्य और खद्योत का अन्तर है तात!

मेधातिथि 'विद्या ददाति विनयं' भद्र! विद्या का धर्म ही विनय देना है। विनय की इस वृत्ति से तुम और धन्य हो उठे। सुना है राजनीतिकुशल आचार्य चाणक्य भी ऐसे ही विनयी थे। उन्हें तुम आज भगवान् कह रहे हो कल तुम्हें भी पण्डित-जन भगवान् कहेंगे।

पतंजलि (मेधातिथि का दायाँ हाथ पकड़कर) अब आप वसिष्ठ और बोधायन का यह आसन ग्रहण करें। (मेधातिथि हँसकर आसन ग्रहण करते हैं।)

कई जन आचार्य मेधातिथि की जय…जय…जय…

कई जन आचार्य पतंजलि की जय…जय…जय…

पतंजलि बोलो…बोलो…अयोध्या नगरी की जय…भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की जय…

कई जन अयोध्या नगरी की जय हो""भगवान् श्रीरामचन्द्र की जय हो"'जय हो""

पतंजलि वेद-विद्या की""व्यास, वाल्मीकि की जय हो"'

कई जन वेद-विद्या की""व्यास, वाल्मीकि की जय हो""

पतंजलि पिता के सामने पुत्र की जय नहीं बोलते"'आप लोग अब केवल आचार्य मेधातिथि की जय बोलेंगे""वह भी अन्त में""पहले अयोध्या नगरी का नाम लेंगे। भगवान् श्रीरामचन्द्र का नाम लेंगे""वेद-विद्या, व्यास, वाल्मीकि का नाम लेंगे और इन सबके पीछे आचार्य मेधातिथि का नाम लेंगे। आप आदेश दें तात! इस जयनाद में पतंजलि का नाम नहीं आयेगा।

मेधातिथि नहीं आयेगा भद्र! तुम्हें इसी में सुख-सन्तोष है तो यही होगा। अपने कर्म का यश अन्य को देने वाले इस धरती पर विरले हैं। पर माता भूमि उन्हीं से कृतार्थ भी होती है।

पतंजलि उपाध्याय मकरन्द से अब आप पूछें मगध के सेनापति को इन्होंने वन्दी क्यों बनाया? किसी के भी कर्म की स्वतन्त्रता छीनने का अधिकार राजा का है। किसी भी आचार्य या उपाध्याय को यह अधिकार आचार्य चाणक्य अर्थशास्त्र में नहीं दे गये।

मेधातिथि (मकरन्द से) कहो भद्र! समाधान दो अपने कर्म का""

मकरन्द मगध के सेनापति स्वयं समाधान देंगे आचार्य! (पीछे की ओर देखकर) आयें""सेनापति! (सब लोग उत्सुक होकर उधर देखते हैं।)

मेधातिथि इन आयुष्मान् का नाम क्या है उपाध्याय?

सेनापति (प्रवेश कर) सेवक विक्रमसेन कहा जाता है आचार्य! अपनी स्वतन्त्र इच्छा से"'अबाध धर्मबुद्धि से उपाध्याय मकरन्द का मैं बन्दी बना हूँ। मेरे निवेदन का आदर जो यह न करते

तो···न बनाते मुझे बन्दी तब तो एक ही डोर से दोनों हाथ और कण्ठ बाँधकर मैं सरयू की धारा में समा जाता।

पतंजलि (अधीर होकर) आत्मघात का पाप करते तुम सेनापति ! पर क्यों ?

विक्रमसेन (प्रसन्न मुद्रा और ध्वनि में) अब मैं सेनापति नहीं हूँ आचार्य ! आपकी दया का बन्दी हूँ। जिस परिस्थिति में मैं पड़ गया उसमें आत्मघात ही मेरे लिए धर्म था। आपके शिष्य उपाध्याय मकरन्द ने मुझे जीवन-दान दे दिया, नहीं तो मैं उस लोक में होता।

मेधातिथि आत्मघाती को वह लोक नहीं मिलता भद्र ! केवल प्रेतयोनि मिलती है।

विक्रमसेन उस योनि में भी मुझे आचार्य पतंजलि के चारों ओर वृत्त बनाने का लाभ मिलता। आदिकवि के रसमय काव्य की कथा जब यहाँ उपाध्याय कहते और बीच-बीच में आचार्य उन श्लोकों का अर्थ-चमत्कार बताते चलते तब उस योनि में भी मुझे चरम तृप्ति मिलती।

पतंजलि जितने दिन यहाँ आदिकाव्य की कथा चली है तुम नित्य आये हो····मार्मिक प्रसंग सुनकर तुम रोते भी रहे हो यह भी मैंने देखा है। किस दारुण परिस्थिति में तुम आत्मघात जैसा घोर पाप करते यह कहो !

विक्रमसेन (दृढ़ शरीर का लम्बा तेजस्वी पुरुष, प्रशस्त ललाट, ऐंठी लम्बी मूँछ, लम्बी रतनार आँखें, धनुष के आकार की भवें, उन्नत वक्ष, कन्धा और कण्ठ, दोनों हाथ रेशम की डोर से बँधे हुए, आसन के निकट पहुँचकर, बँधे हाथों को खोलता है जिसमें अञ्जलि बन जाती है।) राजमुद्रांकित इस आदेश-पत्र को देखें आचार्य ! (मेधातिथि उसकी अञ्जलि से उठाकर भोजपत्र खोलते हैं।)

मेधातिथि (ध्यान से देखकर अत्यन्त गंभीर हो उठते हैं।) ऐं···· पतंजलि के वध की राजाज्ञा···पृथ्वी···आकाश···सूर्यमण्डल चक्र की गति में घूम रहे हैं। सूर्य का पिण्ड काँप रहा है भद्र! (विक्रमसेन से) देख रहे हो····देख रहे हो····बोलो अक्षर नहीं सूझ रहे हैं···(मेधातिथि की काया काँपने लगती है। दोनों हाथों से सिर दबा लेते हैं। दो उँगलियों में दबा भोजपत्र वायु के झोंके में उनके सिर पर हिलने लगता है।) ब्रह्मरन्ध्र फट रहा है कोई सँभालो!

[पतंजलि के संकेत पर मकरन्द मेधातिथि का कन्धा झुककर दोनों हाथों में दबा लेते हैं।]

पतंजलि (आगे बढ़कर भोजपत्र का ऊपरी भाग पकड़ते हैं।) धीरज धरें तात! पुत्र के अनिष्ट की सूचना जब जहाँ मिलती है पिता की यही दशा होती है। छोड़ दें यह राजधर्म की ध्वजा! मैं देखूँ मेरे वध से मगध राज्य की प्रजा का क्या लाभ है? (मेधातिथि के हाथ से छूटकर भोजपत्र पतंजलि के हाथ में आ जाता है।) वसिष्ठ और बोधायन के आसन पर आप बैठे हैं तात! यह न भूलें।

मेधातिथि (संयत होकर) छोड़ दो उपाध्याय! देख रहा हूँ इस आसन के योग्य मैं नहीं हूँ। वसिष्ठ सौ पुत्रों के संहार पर भी हिमालय-से अडिग बने रहे और मैं इस भोजपत्र के लेख से इतना अधीर हो उठा। (आसन से उठने की चेष्टा करते हैं।)

पतंजलि अपने अधिकार से आप इस पर बैठे तात! अब उतर नहीं सकते! उन्हीं भगवान् वसिष्ठ के गोत्र में हम दोनों ने जन्म लिया तात! इस आसन के भोग अग्नि और यज्ञ के प्रथम अधिकारी वसिष्ठ को भोगने पड़े थे जिन्हें स्वयं इन्द्र ने मानव-लोक का प्रथम पुरोहित बनाया जैसे देवलोक के पुरोहित अग्नि हैं। इस मर्त्यलोक में अग्नि का सर्वप्रथम दर्शन वसिष्ठ

को मिला था और अग्नि में प्रथम आहुति भी उन्हीं की पड़ी थी। अग्नि देवजाति के मुख हैं तात ! वसिष्ठ मनुष्यजाति के मुख हैं।

मेधातिथि विधाता की रची इस सृष्टि के नियम और व्यवस्था के लिए शंकर ने जब हर निकाय का एक-एक नियन्ता बनाया····

मकरन्द हाँ तात ! व्यासदेव के महाभारत में जिसे पूर्वपुरुष पंचम वेद कहते आये····

पतंजलि भगवान् बोधायन और आचार्य विष्णुगुप्त भी उसे पंचम वेद मानते थे····

मेधातिथि श्लोक कहो उपाध्याय, मेरी विद्या तो जैसे इस क्षण बीत गयी। अवन्ती में महाकाल के मन्दिर के आँगन में चालीस वर्ष जिसने उस पंचम वेद की कथा सुनाने में काट दिया इस समय वह श्लोक उसकी स्मृति पर नहीं चढ़ रहा है।

मकरन्द (पतंजलि की ओर देखता है, पतंजलि स्वीकृति का संकेत करते हैं।) सुनेंगे वह श्लोक तात !

मेधातिथि हाँ····हाँ कहो उसी से इस देह की चेतना लौटेगी···प्राण जो शरीर के बाहर जा चुके हैं फिर इसमें लौटकर इसे गति देंगे।

मकरन्द 'वसिष्ठमीशं विप्राणां वसूनां जातवेदसम्।
तेजसां भास्करं चक्रे, नक्षत्राणां निशाकरः···

मेधातिथि अर्थ करो····सेनापति के साथ सभी जन सुन लें।

मकरन्द विधाता की रची इस सृष्टि में अनाचार इतना बढ़ गया कि इसका चलना ही कठिन हो गया।

मेधातिथि जैसा अनाचार इस समय बढ़ गया है भद्र ! आचार्य पतंजलि के वध की आज्ञा जिस समय राजा दे रहा है। केवल पतंजलि की नहीं, मेधावी शिष्य और उपाध्यायमण्डली की भी, नगर निवासी जो इन सबके सहायक हों उनकी भी···

नेपथ्य में (कई कण्ठ) धिक्कार है....धिक्कार है यह राजा नहीं पिशाच है....

पतंजलि अर्थ सुनने के लिए लोग उत्सुक हैं भद्र! पहले तुम अर्थ करो फिर इस पर विचार होगा।

मकरन्द हाँ....तब हताश होकर....अपनी ही रची सृष्टि के संहार का संकल्प लेकर ब्रह्मदेव ने देवाधिदेव शंकर का ध्यान किया। भगवान् शंकर उपस्थित हुए। त्रिशूलधारी उन भगवान् ने स्वयं ध्यान लगाया। उस समय ध्यान में उन्हें जो यत्न सूझा उसके अनुसार उन्होंने सृष्टि के सभी निकायों का एक-एक अधिपति बनाया। अनेक निकायों के अनेक अधिपतियों में ब्राह्मण-वर्ग का राजा उन्होंने वसिष्ठ को, वसुओं का राजा अग्नि को, तेजस्वी ग्रहों का स्वामी सूर्य को और नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा को बनाया।

मेधातिथि 'वसिष्ठमीशं विप्राणाम्' ब्राह्मणों के अधिपति वसिष्ठ के योग्य मेरा व्यवहार होना चाहिए। जिस व्यवहार में अपने लिए कुछ न रखकर लोकहित के अर्थ में सर्वमेध कर देना है। पुत्रों के संहार करने वाले के प्रति भी वैरभाव मन में न आने देना है। जिसमें धरती की क्षमा है....सूर्य की कर्मशक्ति है। अब मैं धीरज नहीं छोड़ूँगा भद्र! राजपत्र के अक्षर मैं ठीक से पढ़ न सका था पतंजलि! तुम कहो, उसमें आदेश क्या है? कहते हैं यज्ञ की हिंसा शाक्यमुनि न सह सके, पुत्र और तरुणी पत्नी को छोड़कर निर्वाण की खोज में आधीरात को घर से निकल पड़े। सूर्य को साक्षी बनाकर निकले होते तो कदाचित् उनके भक्त ऐसी दारुण हिंसा में न लगते। [सब ओर हँसने की ध्वनि उठती है।]

पतंजलि [राजपत्र को ध्यान से देखकर] सेनापति विक्रमसेन के संकेत पर मैं पकड़ा जाता, मेरे उपाध्याय और शिष्य पकड़े जाते;

पकड़ने वाले मगध के सैनिक नहीं यवन सैनिक होते, इस नगरी के जो जन हमारे सहायक बनते उनकी भी यही दशा होती !

मेधातिथि यवन सैनिक कैसे जानते पतंजलि कौन है ?

विक्रमसेन श्वपच का यह कार्य मुझे करना पड़ता आर्य ! यवन गुल्म-नायक को मैं पहले आचार्य की पहचान कराता। इनके पकड़े जाने पर जितने उपाध्याय और जितने विद्यार्थी मिलते सबकी पहचान मैं कराता। इनके सहायक नगरवासी और श्रेष्ठी समुदाय का परिचय देकर उन्हें भी मैं ही पकड़वाता....

पतंजलि फिर हमलोग डोर में बाँधकर पशुओं की भाँति तमसा के तट तक हाँके जाते...और वहाँ वह कृत्य होता....आगे का अनुमान आप कर लें तात ! इस नगरी के महाभाग निवासी भी अनुमान कर लें। उसे कहकर अपनी वाणी मैं अपवित्र न होने दूँगा।

विक्रमसेन आधीरात को मुझे यह आज्ञा-पत्र मिला। स्कन्धावार के सैनिकों को तूर्य बजाकर एकत्र करना पड़ा। सबके जुट जाने पर मैंने यह पत्र पढ़ा। सबकी सम्मति ली। मेरे भाग्य से सभी सैनिक इस पापकर्म का विरोध करने लगे। उपाध्याय मकरन्द को पाँच सैनिक भेजकर स्कन्धावार में आने का निवेदन किया। इनके पहुँचने तक सभी सैनिक देश की रक्षा के लिए, आचार्य पतंजलि के साथ उपाध्याय-मण्डली और शिष्यों की रक्षा के लिए, विष्णु-शंकर के मन्दिर, वेद-विद्या, शास्त्र और काव्यों की रक्षा के लिए, इस नगरी और इसके निवासियों की रक्षा के लिए मगध सम्राट् का प्रतिकार करने की संकल्प-प्रतिज्ञा तीन बार कर चुके थे। उन्हीं सैनिकों ने मेरे दोनों हाथ कौषेय डोर से बाँधकर उपाध्याय को सौंप दिया। मैं इस समय अपनी इच्छा से अयोध्या के प्रतापी आचार्य पतंजलि का और यहाँ की समूची प्रजा का बन्दी हूँ। मथुरा और मध्यमिका के

संहार की कथा से सैनिक विक्षुब्ध थे। आचार्य ने इस स्थान से प्राण रहते न हटने की प्रतिज्ञा की इससे अयोध्या की प्रजा के साथ मगध-नरेश के सैनिकों का भी मनोबल बढ़ा था। देश और जाति का गौरव उनके भीतर भी जागा था। इस आदेश ने अग्नि में घी का काम किया और वह धू-धू ज ऽ उठी।

पतंजलि किस वंश में उस राजदूत ने जन्म लिया था सेनापति ! जो रात यह राजमुद्रांकित आदेश ले आया।

विक्रमसेन [दुःख की हँसी] श्रमणवंश में आचार्य ! [सब लोग हँसते हैं।] धर्मशास्त्र की वर्ण-व्यवस्था मगध की राजनीति में मिट चुकी है। वहाँ एक ही कुल, एक ही वर्ण, एक ही वंश जीवित है, उसका नाम है श्रमण। पाटलिपुत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मर गये। मगध की मंत्रिपरिषद् मर चुकी है। राजदूत सभी मर गये। संघस्थविर धर्मरक्षित प्रधान मंत्री और प्रधान पुरोहित है। उसके प्रधान शिष्य मंत्रिपरिषद् के अन्य मंत्री और सेनापति का कार्य करते हैं। छोटे शिष्य राजदूत बने हैं। मथुरा और मध्यमिका में सेनापतियों के नाम ऐसे ही आदेश यही श्रमण ले गये। वे अभागे यह न जान सके कि यह आदेश सम्राट् बृहद्रथ का नहीं उस सद्धर्मी धर्मरक्षित का है। उनके सामने प्रजा और आचार्यों का दारुण संहार हुआ पर वे जैसे नाटक के दर्शक बने बैठे रहे।

मेधातिथि एक बार दैव मुझ पर क्रूर बना था भद्र ! धर्मरक्षित के निकट मुझे भी बैठने का अवसर मिला था। किसी संक्रान्ति, किसी सूर्य या चन्द्रग्रहण पर भी वह स्नान नहीं करता। दिन, मास, वर्ष बीतते जाते हैं, वह कभी स्नान नहीं करता। उसकी देह से बूढ़े बकरे की देह-जैसी दुर्गन्ध निकलती रहती है। श्वास रोककर उसके निकट बैठा रहा। खुलकर साँस लेता तो निश्चय था वमन करने लगता।

पतंजलि तो क्या यह भी सम्भव है कि मौर्य बृहद्रथ को कुछ पता न हो और इस प्रलय के केन्द्र में बैठकर इसका संचालन वही सद्धर्मी करता हो ! पर राजमुद्रा उसे कहाँ मिलेगी ?

विक्रमसेन पितृव्य से एक बार सुना था आचार्य ! मगध सम्राट् ने अपनी एक मुद्रा उसी के व्यवहार के लिए उसी के पास रख दी है !

पतंजलि मन्त्रिपरिषद् और पौरजन यह अनर्थ नहीं जानते ?

विक्रमसेन राजधर्म के पतित हो जाने पर मन्त्री भी पतित हो जाते हैं, आचार्य और प्रजा भी पतित हो जाती है।

मेधातिथि 'यथाहि कुरुते राजा प्रजास्तदनुवर्तते'। आदिकवि कह गये भद्र ! राजा के आचरण का अनुकरण प्रजा भी करती है।

पतंजलि सेनापति का बन्धन खोल दें तात ! अब ये फिर मगध की सेना के सेनापति बनकर अयोध्या की रक्षा करें।

विक्रमसेन राजाज्ञा मेरे लिए दूसरी है आचार्य ! मेरा बन्धन अयोध्या में नहीं पाटलिपुत्र में खुलेगा। तब मैं राजा की सेना का नहीं प्रजा की सेना का साधारण गुल्मनायक या उप-सेनापति बनूँगा।

मेधातिथि प्रजा की सेना भद्र !

विक्रमसेन हाँ आचार्य ! इस समय जो सेना अयोध्या में है....वह प्रजा की सेना है....राजा से इस सेना ने विद्रोह किया है। आजकल में पाटलिपुत्र में भी प्रजा जान जायेगी कि राजा के निमन्त्रण पर विदेशी यवन मथुरा, मध्यमिका और साकेत के संहार में सफल रहे हैं। आचार्यों और किशोर शिष्यों का वध, देव-मन्दिरों, ग्रन्थों का ध्वंस, किशोरियों पर अनाचार प्रजा कभी क्षमा नहीं करेगी। काशी की, गोमठ की, पाटलिपुत्र की सेना भी राजा से विद्रोह कर प्रजा का साथ देगी। विद्रोह कराने का भार यह सेवक स्वेच्छा से स्वीकार करता है। जो स्वेच्छा से बन्दी बना वह स्वेच्छा से यह भी करेगा। इतना कर लेने

पर मैं प्रजा की सेना में लघु सैनिक बनूँ या सेनापति दोनों बराबर हैं।

नेपथ्य में (कई कण्ठ) साधु भद्र! साधु!

पतंजलि तुम्हारे सेनापति बने रहने पर कार्य सरल होगा भद्र!

विक्रमसेन उस सेना का प्रधान सेनापति आप किसी को बना चुके हैं। सद्धर्म के चंगुल से राजधर्म की रक्षा वही करेगा। जो महावीर अपने एकमात्र किशोर पुत्र को देश के उद्धार के यज्ञ में पहली आहुति देने का संकल्प आपके सामने इसी स्थान पर ले चुका है। पुत्र के शीश पर हाथ धरकर जो आपके सामने शपथ ले चुका है कि वह देश का उद्धार करेगा चाहे इसमें पुत्र-शोक के शूल का घाव उसे क्यों न सहना पड़े। वह स्कन्द का अवतार है। तारकासुर से देवलोक की रक्षा करने वाला उस महापुरुष के रूप में आया है। दत्तमित्र वही तारक है उसकी सेना में वे ही असुर हैं।

पतंजलि (हँसकर) कौन है वह भद्र!

विक्रमसेन जिन शौंगी पुत्रों की चर्चा उपनिषद् में है आचार्य! उसी शुंग कुल का ब्राह्मण पुष्यमित्र। विदिशा जिसकी जन्मभूमि है। इस यवन के आक्रमण के प्रतिकार का संकल्प जिसके मन में सबसे पहले उठा। इस भारतभूमि में जन्म लेने वाले तो कई कोटि हैं। यह धरती केवल उसी की माता नहीं है औरों की भी है। फिर किसी दूसरे के मन में विदेशी शत्रु के प्रति रोष की ज्वाला क्यों नहीं उठी? इस आक्रमण का रहस्य उसी ने आपको बताया। तब आप भी सजग हुए! उसी के संकल्प से प्रेरित होकर आपने भी इस पवित्र भूमि से न हटने की प्रतिज्ञा की।

पतंजलि इस आक्रमण के रहस्य से मैं अनभिज्ञ था भद्र! स्वप्न में भी मुझे कल्पना नहीं थी कि यवन आक्रमण मगध नरेश के निमं-

त्रण पर हो रहा है और न मैं जानता था कि यह आक्रमण वेद विद्या के संहार के निमित्त, वैदिक आचार्यों और ब्रह्मचारियों के संहार के निमित्त, हमारे मन्दिरों, ग्रन्थों के संहार के निमित्त हो रहा है। विदेशी यवन से प्रजा और धर्म की रक्षा मगध नरेश करेंगे मैं तो यही जानता था। चाणक्य भगवान् ने मगध के सिंहासन से नन्दराज को उतारकर मौर्य चन्द्रगुप्त को प्रतिष्ठित किया था। उस समय भी यवन शैलूष ने इस देश पर आक्रमण किया था भद्र !

विक्रमसेन हाँ आचार्य ! देश की सीमा जो चार सौ वर्षों से सिकुड़कर पश्चिम में सिन्धु तक आ गयी थी वह उसी समय निषध पर्वत तक फिर पहुँच गयी। चाणक्य भगवान् ने मनु के भारतवर्ष में एक छोर से दूसरे छोर तक एकच्छत्र राष्ट्र का निर्माण किया था। विदेशी शत्रु चाणक्य के शिष्य चन्द्रगुप्त को देहधारी यमराज मानने लगे थे।

मेधातिथि उसी प्रतापी कुल में इस बृहद्रथ ने भी जन्म लिया है ? चन्द्रगुप्त का वंशज है यह···?

विक्रमसेन (पतंजलि से) आचार्य !

पतंजलि कहो भद्र ! किस गम्भीर विचार में पड़ गये हो ?

विक्रमसेन आचार्य चाणक्य ने मगध के सिंहासन से नन्दराज को उतारकर मौर्य चन्द्रगुप्त को प्रतिष्ठित किया था !

पतंजलि यही तो इतिहास कहता है भद्र !

विक्रमसेन फिर वही कर्म आप करें। मौर्यराज को सिंहासन से उतारकर····

पतंजलि किसको प्रतिष्ठित करें···

विक्रमसेन शुंगवंशीय पुष्यमित्र को आर्य ! जिससे आप विष्णु के तीन अवतारों का कार्य लेना चाहते हैं। धरती का उद्धार कर जो वाराहावतार का कार्य करेगा····शत्रु का हृदय चीरकर जो नृसिंहावतार का कार्य करेगा फिर वेद और विद्याद्रोही को

बाँधकर वामनावतार का कार्य करेगा। (उत्साह में) पाट-लिपुत्र का उद्धार धरती का उद्धार होगा आर्य! दत्तमित्र को पीट-पीटकर...खदेड़ देना शत्रु का हृदय चीरना होगा।

मेधातिथि (हँसकर) तीसरा पराक्रम कहो भद्र!

विक्रमसेन (गम्भीर और दृढ़ वाणी में) मौर्य वृहद्रथ को सिंहासन पर बाँधकर नीचे खींच लेना बलि को पाताल भेजना होगा। तीसरा विक्रम यही होगा आर्य! इस आसन से आप इस लक्ष्य को स्वीकार लें।

मेधातिथि मैं स्वीकार कर रहा हूँ भद्र! यही होगा। अयोध्या के नागरिक हमारे इस संकल्प को स्वीकार करते हैं?

नेपथ्य में (चारों दिशाओं से ध्वनि हो उठती है।) हम स्वीकार करते हैं....स्वीकार करते हैं।

नेपथ्य में (कई जन) प्रजा की रक्षा का यही मार्ग है।

नेपथ्य में (एक जन) देवासुर संग्राम में देवविजय के लिए बलि बाँधा गया था न?

मेधातिथि हाँ भद्र! यही कथा पुराण की है।

नेपथ्य में (वही जन) इस देवासुर संग्राम का बलि वृहद्रथ बाँधा जाय!

विक्रमसेन इस कार्य में आप लोग सहायक होंगे?

नेपथ्य में (वही जन) तन...मन....धन से...प्रजा अब अपने पराक्रम से अपनी रक्षा करेगी। अपना राजा प्रजा स्वयं चुनेगी! (चारों ओर हर्ष और उत्साह की ध्वनि होती है।)

पतंजलि (विक्रमसेन से) तुम्हारा यह रूप जो पहले देखता भद्र! तो पुष्यमित्र को जैन सम्राट् से सहायता. माँगने न भेजता।

विक्रमसेन यवन असुर पराक्रमी हैं आर्य! इनकी अपार सेना में वाह्लीक से लेकर प्रयाग तक के सैनिक आ चुके हैं। अशोक ने अपने पौत्र प्रपौत्रों तक को युद्ध न करने का संकल्प लेकर देश का द्वार विदेशियों के लिए खोल दिया था। मगध की सेना केवल

प्रजा को भयभीत करने के लिए रही है। पराक्रमी शत्रु को रोकने की शक्ति इस सेना में नहीं है। कहाँ निषध और कहाँ अयोध्या! कुभा के साथ सप्तसैंधव प्रदेश की सात नदियाँ, यमुना, गंगा पर शत्रु का अधिकार हो चुका है। हमारी सरयू पर वे अधिकार कर लें फिर इस देश में अधिकार करने को क्या बचेगा?

मेधातिथि अशोक की धर्म-विजय अब पूरी हो रही है भद्र! मातृभूमि की आधी काया विदेशी दस्यु के अधिकार में है। पितरों का मूलस्थान, ब्रह्मावर्त, अन्तर्वेदी सब संस्कारहीन यवनों के अधिकार में हैं। जिस पुण्यभूमि में ऋषि वेद की ऋचा का दर्शन करते रहे; सामगान और यज्ञधूम से जो आकाश धन्य था··· चला गया···सब चला गया भद्र! उस भूमि से व्यास, वाल्मीकि की वाणी का निर्वासन हो गया। सुनते हैं किसी यवन कवि के काव्य का गान उनके सैनिक करते हैं जिसमें उस देश का महावीर मरे शत्रु के शव को अपने रथ में बाँधकर···उस शव के खण्ड धरती पर छितरा देने का कुकर्म करता है। वीरता के नाम पर जिसमें केवल हिंसा है। इसी अयोध्या के पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र ने लंका के रावण का वध किया पर क्या उसकी काया का अन्तिम-संस्कार पूरे आदर, सम्मान और वेद-विधि से नहीं कराया? वीरगति को प्राप्त शत्रु की काया की दुर्गति करनेवाले हमारे स्वामी बन गये।

विक्रमसेन आपके प्रताप से हमारी भूमि फिर मुक्त होगी आर्य! शेषनाग अब दूसरी करवट ले रहे हैं। कालपुरुष अब हमारा सहायक है। [अग्निमित्र धारिणी के साथ प्रवेश करता है। रूप और शृङ्गार की इस जोड़ी को सभी जन विस्मय से देखते हैं। अग्निमित्र के ओठ पर अभी रेख भीन रही है। अंग-अंग से स्वर्णचूर्ण की आभा फूट रही है। ललाट पर भस्म का त्रिपुण्ड,

आँखों में अंजन, कानों में वज्र जड़े कुण्डल, कन्धे तक उत्त-रीय, भौंरे के रंग की कुञ्चित अलकावली, कन्धे में धनुष, पीठ पर तरकस। किशोरी धारिणी महाग्रहों के बीच में चन्द्रकला-सी लगती है।]

अग्निमित्र (विस्मय में) ऐं! आसन पर आचार्य पतंजलि नहीं हैं।

पतंजलि ये मेरे अवन्ती के आचार्य मेधातिथि हैं।

अग्निमित्र (धारिणी की बाँह पकड़कर) चलो सखी! आचार्य को प्रणाम करें। (दोनों मेधातिथि के सामने हाथ जोड़कर झुककर प्रणाम करते हैं! मेधातिथि अपने दोनों हाथ उन दोनों के सिर पर रखकर आशीर्वाद देते हैं।)

मेधातिथि शत्रुंजय वनो कुमार…यह पुत्री अखण्ड सौभाग्यवती हो।

[अग्निमित्र धारिणी के साथ पतंजलि के चरणों पर झुकता है। पतंजलि दोनों का सिर सूँघते हैं।]

पतंजलि (गद्‌गद कण्ठ से) भगवान् तुम्हें शतायु करे! अर्थ, धर्म और काम के फल से तुम्हें कृतार्थ करे। पुत्री वीरपुत्र की माता बने।

अग्निमित्र (मन्द हँसी) मोक्ष का आशीर्वाद आपने नहीं दिया आचार्य!

पतंजलि (हँसकर) शाक्यमुनि के श्रमण उस पर अधिकार कर चुके हैं प्रियदर्शन! अपने अधिकार में जो है ही नहीं उसका दान कैसे होगा?

[सब ओर की हँसी धरती-आकाश में गूँज उठती है।] सेना-पति पुष्यमित्र के पुत्र हो तुम…हाँ…अग्निमित्र!

अग्निमित्र हाँ…आचार्य…आप मुझे पहचान न सके।

पतंजलि सेनापति तुम्हें लेकर रात को यहाँ पहुँचे थे। यवन आक्रमण से वे रुद्र बन गये थे। किसी प्रकार पत्र लिखकर उन्हें दे सका। विदिशा से यहाँ तक की यात्रा घोड़े पर…दो घड़ी भी विश्राम नहीं फिर कलिंग की यात्रा घोड़े पर…तुम्हें ठीक से

देख भी नहीं सका था। पुत्र के साथ उनकी यह तपस्या देश कभी नहीं भूलेगा।

अग्निमित्र माता की सेवा तपस्या नहीं कही जाती आचार्य ! विदिशा से अयोध्या तक की मातृभूमि का दर्शन···फिर यहाँ से कलिंग तक की मातृभूमि का दर्शन····मार्ग के सभी नदी-पर्वत····वन-उपवन, खेत-खलिहान, ग्राम, नगर सबका सुख मिला। मगध के स्कन्धावार में बराबर अश्व बदलते गये। (विक्रमसेन की ओर देखकर) ऐं ! आपके हाथ बँधे क्यों हैं ? यहाँ की सेना के सेनापति आप रहे हैं ! दो तरुण अश्व तो यहाँ आपसे मिले थे ?

विक्रमसेन अयोध्या की प्रजा का बन्दी हूँ मैं प्रियदर्शन ! खोल दोगे यह बन्धन ?

अग्निमित्र जब तक प्रजा यह अधिकार इस सेवक को न दे तब तक तो नहीं।

[सब ओर उत्साह की हँसी]

विक्रमसेन राजनीति की भाषा सेनापति का पुत्र भी पढ़ गया आचार्य ! मगध का सम्राट् राजनीति की भाषा नहीं जानता। विदिशा के ब्राह्मण सेनापति का किशोर पुत्र यह भाषा जानता है।

अग्निमित्र कलिंग के जैन सम्राट् यही कहते हैं। शास्त्रवाणी भी यही है। जिस राजा से प्रजा की रक्षा नहीं हो उसका भार यह धरती नहीं ढोना चाहती। विन्ध्य और हिमवान् का भार यह भूमि सुख से ढोती है पर ऐसे राजा का नहीं सेनापति !

पतंजलि (धारिणी की ओर संकेत कर) इस कन्या का परिचय दो पुत्र !

[अग्निमित्र असमंजस में पड़ जाता है। धारिणी की ओर देखकर धरती की ओर देखने लगता है।]

धारिणी आपके पुत्र चित्रकला और वीणावादन में निपुण हैं आचार्य !

कलिंग के प्रमदवन में पूछने पर भी इन्होंने अपना परिचय मुझे नहीं दिया था। यहाँ मेरा परिचय आपको नहीं दे रहे हैं। अपना या किसी दूसरे का परिचय देना इनके शास्त्र में मना है। (सब ओर हँसी छूटती है।) आदेश दें आचार्य! मैं अपना परिचय स्वयं दूँ।

अग्निमित्र प्रतिष्ठान की सातवाहन महारानी नागनिका के स्नेह से यह कुमारी अत्यन्त मुखर हो गयी है आचार्य! अपने इस गुण का परिचय तो इन्होंने आपको स्वयं दे दिया! (सभी-जन हँस पड़ते हैं।)

मेधातिथि भगवती सरस्वती का भी प्रधान गुण यही है प्रियदर्शन! वे भगवती सदा किशोरी हैं…मुखर हैं….

अग्निमित्र जैसी यह कुमारी हैं आचार्य! [उसकी मन्द हँसी के साथ और जन हँसते हैं।]

मेधातिथि सरस्वती के जिस रूप का कवि दर्शन करते हैं….यही है… तुम्हारे ध्यान में सरस्वती का जो रूप उतरता है प्रियदर्शन! उसमें और इस कन्या के रूप में अन्तर क्या है?

अग्निमित्र आप इसे राजहंस पर बैठायें….हाथ में वीणा और पुस्तक दे दें…फिर तो…

मेधातिथि कोई अन्तर नहीं रहेगा न? (पतंजलि के साथ अन्य जन हँसते हैं।

पतंजलि सुनो प्रियदर्शन! यदि मेरा अनुमान ठीक है…प्रतिष्ठान की महारानी नागनिका का स्नेह जो इस कन्या का कवच है तब तो यह आचार्य इन्द्रदत्त के वंश की कन्या है…जिसके जन्म के पहले ही वर्ष में इसकी माता चली गयी और तीसरे ही वर्ष इसके पिता भी चले गये!

[धारिणी सिसककर रो पड़ती है।]

अग्निमित्र सरस्वती भी रोने की कला जानती हैं आचार्य?

पतंजलि बिना सरस्वती की उस कला के आदिकाव्य में इतनी करुणा कहाँ से आ गयी ? आचार्य रुद्रदत्त की वही कन्या है यह····जिसकी धर्ममाता महारानी नागनिका हैं !

धारिणी (भरे कण्ठ से) वही अभागिनी है तात !

पतंजलि अपने दोनों पुत्रों के साथ तुम्हारे लिए भी महारानी ने मुझसे अत्यन्त आग्रह कर रक्षामन्त्र लिखाया था ?

धारिणी हाँ तात ! (बायीं बाँह पर हाथ फेरकर) यहाँ बँधा है। तीनों यन्त्र एक ही आकार के हैं····माता प्रति प्रदोष को जिनकी पूजा करती हैं···आहुति का धूम देकर····कपूर की आरती करती हैं।

पतंजलि तीनों की एक साथ पुत्री !

धारिणी (भय में) तब तो मिल जाने का भय रहेगा। किसी का किसी की बाँह पर बँध जायेगा। बारी-बारी यह कार्य करती हैं। पहले मेरी बाँह से लेकर··जब फिर बाँध देती हैं तब वेदश्री और यज्ञश्री की बारी आती है।

पतंजलि (मेधातिथि से) सुन रहे हैं तात ! महारानी अपने पुत्रों से अधिक अनुराग अपने स्वर्गीय आचार्य की पुत्री को देती हैं ! इसके कल्याण की कामना अपने पुत्रों से पहले करती हैं।

मेधातिथि उनके पति के दो अश्वमेध यज्ञों के प्रधान आचार्य रुद्रदत्त की पुत्री में उन्हें उन यज्ञों की सिद्धि मिलती है।

धारिणी वे कहती हैं आचार्य····

पतंजलि कहो चुप क्यों हो गयी··

धारिणी मैं कुछ नहीं समझ पाती तात ! कहती हैं यज्ञ में पशुहिंसा तो नाम मात्र की है···इसके व्याज से पुरुष की कायरता का वध होता है; उसके मद, मोह, काम, क्रोध, अहंकार का वध होता है। पुरुष के कर्म को गति मिलती है···मृत्यु का भय उसके मन पर नहीं चढ़ने पाता। यज्ञ का फल जाति और देश के

बल-विक्रम को बढ़ाता है, वेद-विद्या को बढ़ाता है। अन्न की उपज न हो, मेघ न बरसें, गायें वन्ध्या पड़ जायँ, नारी को पुत्र का लाभ न हो यदि यज्ञ सदा के लिए रुक जायँ·····तब लोक की वही दशा होगी जो गंगा और सरयू के सूख जाने पर होगी ? उनके मुँह से यह सब सुनकर मुझें रोमांच हो जाता है। मगध नरेश अशोक ने जो यज्ञ की परम्परा न रोक दी होती तो बार-बार विदेशी न चढ़ आते···

पतंजलि (हँसकर) पर तुम्हें यह सब स्मरण कैसे है ? (अग्निमित्र से) विधाता इसे तुम्हारी सरस्वती बनाना चाहता है प्रिय-दर्शन ! (मेधातिथि से) क्यों आचार्य, यह योग कैसा रहेगा ?

मेधातिथि साधु भद्र ! पतंजलि की आँखें विधाता की रेख देखती हैं। दोनों को देखते ही·····जैसे रति और काम की जोड़ी हो·····मेरे मन में भी यही कामना उठी।

अग्निमित्र यह अवसर इन बातों का नहीं है आचार्य ? शत्रु का संकट देखें··· देखें भारत की भूमि त्राहि-त्राहि कर रही है। धर्म के हेमकूट से धू···धूकर लपटें निकल रही हैं····

पतंजलि रुको·····कविता न रचो···शंकर के ताण्डव के भीतर पार्वती का लास्य देखो, प्रलय की परिधि में सृष्टि के नये अंकुर देखो ! पूर्वपुरुष जो यह न देखते आये होते तो अब तक वेद मिट गये होते·····ऋषियों के नाम मिट गये होते·····व्यासदेव और वाल्मीकि की वाणी से. दिशाएँ पवित्र न होतीं·····चलो यहाँ आओ आचार्य के निकट·····तुम भी पुत्री·····वसिष्ठ और बोधा-यन के आसन की इस धरती ने सुख-दुःख के अनेक प्रसंग देखे, आज यह भी देख ले···'शुभस्य शीघ्रम्' विलम्ब न करो, दोनों बढ़ो·· (अग्निमित्र के साथ धारिणी आसन के निकट पहुँचती है।) इस कन्या का हाथ इस किशोर के हाथ में दें आचार्य··· दोनों को आशीर्वाद दें····

मेधातिथि (आनन्द की वाणी में) आचार्य पतंजलि की जय हो…(चारों ओर जयनाद और हर्ष की ध्वनि, मेधातिथि धारिणी का हाथ अग्निमित्र के हाथ में देकर दोनों के हाथ अपने दोनों हाथों में बाँध लेते हैं ।) संस्कार कब और कहाँ होगा भद्र !

विक्रमसेन पाटलिपुत्र में आचार्य…अयोध्या का संकल्प पाटलिपुत्र में पूरा होगा…

पुष्यमित्र (प्रवेश कर) अयोध्या का संकल्प पाटलिपुत्र में…अरे ! (धारिणी और अग्निमित्र की ओर देखकर) हरे ! हरे ! (धारिणी की ओर संकेत कर) इसकी धर्ममाता ने मेरे पुत्र को अभी देखा भी नहीं । कहाँ प्रतिष्ठान का वह राजभवन और कहाँ विदिशा के ब्राह्मण की वह कुटी ! मानसरोवर की राजहंसिनी तलैया के पंक में कैसे रहेगी आचार्य ? मेघवाहन खारवेल के मन में भी यह कामना उठी थी पर बिना महारानी नागनिका से पूछे वे साहस न कर सके ।

मेधातिथि साहस ? किस शब्द का प्रयोग कर रहे हो ब्राह्मण ! जो कर्म लोक में अनाचार माना जायेगा वह साहस होगा । पर यह कर्म तो लोक का पुण्यतम कर्म है…प्रथम यज्ञ का श्रीगणेश यह कर्म है । शस्त्रधारी ब्राह्मण कभी-कभी शास्त्र का चीरहरण कर देता है । इस युग के ऋषि पतंजलि और अयोध्या के इतने भद्रजन जिस कर्म के लिए हमसे आग्रह करें…जिसके संकेत से आनन्द-विभोर होकर नाच उठें…

पुष्यमित्र सेवक से भूल हो गयी आचार्य…

पतंजलि मेघवाहन खारवेल जिस कर्म का पुण्य न उठा सके…यह कहना था सेनापति ! साहस शब्द सदैव अनाचारवाचक है ?

पुष्यमित्र प्रायश्चित्त क्या होगा आचार्य ?

पतंजलि इस कन्या के कल्याण के लिए जिस दिन प्रतिष्ठान की राजमाता ने मुझसे रक्षामन्त्र लिखाया था उसी दिन इसके योग्य

वर का भ.र भी मुझी पर डाल दिया था। मेरा लिखा वह रक्षामन्त्र इस समय भी इसकी बायीं बाँह पर बँधा है। इन दोनों का यह बन्धन (ऊपर हाथ उठाकर) उस लोक से बन-कर आया था। मेघवाहन के मन में यही कामना आयी, तुम्हारे मन में भी आयी होगी। मेरे मन में···पितातुल्य आचार्य मेधातिथि के मन में (चारों ओर हाथ घुमाकर) अयोध्या-पुरी के इतने निवासियों के मन में यह कामना क्यों आयी ? प्रतिष्ठान की राजमाता इन दोनों को एक साथ देखतीं तो उनके मन में भी यही कामना आती भद्र! अब तुम इन दोनों के शीश पर अपने दोनों हाथ रख दो।

पुष्यमित्र (हँसकर) जो आज्ञा आचार्य! (दोनों के सिर पर एक-एक हथेली रखता है।)

[सुकेशी और सुनयना प्रवेश करती हैं। दोनों इस दृश्य को देखकर हर्षातिरेक से नाचने लगती हैं।]

विक्रमसेन तुम लोगों ने यह नृत्य कहाँ सीखा ?

सुकेशी प्रतिष्ठान के राजभवन में। (धारिणी की ओर संकेत कर) कुमारी के साथ दो वर्ष नृत्य, वीणा, चित्र की कला हम सीखती रही हैं।

विक्रमसेन तुम्हारा जन्म किस देश में हुआ ?

सुनयना यवन देश में···

विक्रमसेन यवन आक्रमण के पहले यहाँ यवन कुमारियों के नृत्य का फल क्या होगा आचार्य ?

सुकेशी कलिंग की महारानी यह संयोग देखना चाहती थीं। मेघवाहन से उन्होंने इसके लिए आग्रह भी किया। उन्होंने कहा था प्रतिष्ठान की राजमाता के सामने उन्हीं के भवन में यह कार्य होगा। होनी यहाँ थी! हमारे मन के भीतर आनन्द जब न समा सका तब हम नाचने लगीं।

सुनयना इस मंगल पर्व पर हमारा मंगल नृत्य हुआ है। कुमारी के पतिदेव हम दोनों को यौतुक रूप में प्राप्त करेंगे। प्रतिष्ठान की महारानी हम दोनों से पहले ही कह चुकी हैं। और यौतुक चाहे जब दें। हम दोनों को सेवा का लाभ तो अभी मिल गया।

[मेधातिथि दोनों के हाथ छोड़ देते हैं। पुष्यमित्र भी अपने हाथ दोनों के सिर से खींचकर पतंजलि के निकट खड़े होते हैं।]

पतंजलि (वृषकेतु और विरोचन से) तुम दोनों कुमार अग्निमित्र, उनकी भावी पत्नी और इन दोनों यवन किशोरियों को भगवान् श्रीरामचन्द्र की जन्मभूमि मन्दिर के साथ अन्य मन्दिरों में देवदर्शन कराकर यहीं ले आओ। फिर उस पार मनोरमा के तट पर वसिष्ठाश्रम में इन सबको पहुँचाना होगा।

अग्निमित्र हम दोनों···यवन आक्रमण में आपकी सेवा में रहने का संकल्प मेघवाहन के सामने ले चुके हैं आचार्य !

पतंजलि देवदर्शन कर लौटो प्रियदर्शन ! अपने संकल्प से मेरे संकल्प के बाधक तुम नहीं बनोगे।

धारिणी कलिंग की महारानी मुझे यहाँ आने से रोक रही थीं आचार्य ! आपके दर्शन के लिए मुझे अधीर देखकर मेघवाहन नरेश ने उन्हें समझाकर आने दिया। मैं तो हठ कर आपके साथ रहूँगी तात !

पतंजलि तुम पहले इस नगरी का दर्शन करो पुत्री ! जिसकी धूल में कभी रघुवंश के चक्रवर्ती नरेश खेले थे। जिसकी धूल ललाट पर लगाकर श्रीरामचन्द्र ने सोने की लंका जीती थी। देव-मन्दिरों का दर्शन करो। लौटकर आओ, फिर देखेंगे।

[वृषकेतु विरोचन के साथ अग्निमित्र, धारिणी, सुकेशी, सुनयना का प्रस्थान।]

पुष्यमित्र मनोरमा तट के वसिष्ठाश्रम में इन्हें क्यों भेजना है आचार्य !

पतंजलि अयोध्या के सभी किशोर-किशोरी वहीं भेजे गये हैं। गोधन के साथ सभी ग्रंथ वहीं भेजे गये हैं। अयोध्या की रक्षा जो न हो सके तो कम से कम वर्तमान की आहुति देकर हम भविष्य बचा लें। मथुरा और मध्यमिका में वर्तमान के साथ भविष्य का भी लोप हो गया। जैन सम्राट् से क्या सिद्धि मिली ?

पुष्यमित्र जैन होकर भी वे आपके परमभक्त हैं। यह नगरी उनके तीर्थंकर की भी भूमि है। इसकी रक्षा वे पूरी शक्ति से करेंगे। उनके सेनापति विरूपाक्ष तमसा के इस तट पर पहुँच गये हैं। सेना भी इस पार उतर रही है। यवन सेना तमसा के इस पार न हो सकेगी !

पतंजलि अब जैन और वैदिक विदेशी शत्रु से टक्कर एक साथ लेंगे। दैव दायें हैं भद्र ! अब चिन्ता नहीं।

विक्रमसेन राजपत्र सेनापति को दें आचार्य !

पुष्यमित्र कैसा राजपत्र भद्र ! (ध्यान से देखकर) तुम्हारे हाथ बँधे हैं। शत्रु हो तो इस उद्धार भूमि में क्यों हो ?

विक्रमसेन आप पहले पत्र पढ़ें। राजमुद्रांकित पत्र…फिर मुझसे प्रश्न करें।

पुष्यमित्र (पतंजलि के हाथ से पत्र लेकर ध्यान से देखता है। उसकी मुद्रा पहले गंभीर फिर क्रोध में परिवर्तित होती है।) आचार्य पतंजलि के साथ सभी उपाध्याय और शिष्य…साकेत की प्रजा भी…इन सबके वध में सद्धर्म का प्रचार है। सेनापति विक्रम-सेन तुम्हीं हो…(विक्रमसेन की ओर देखकर)

विक्रमसेन सेवक का नाम विक्रमसेन है सेनापति ! सेनापति अब केवल आप हैं।

पुष्यमित्र किस सेना का भद्र ! परिहास कर रहे हो !

विक्रमसेन यह पापकर्म मुझे न करना पड़े। अयोध्या की सेना ने तो मगध-

नरेश से विद्रोह किया है और तब मैं उपाध्याय मकरन्द का बन्दी बना हूँ।

पुष्यमित्र तुम्हारे हाथ में यह बन्धन किसने लगाया ?

विक्रमसेन मगध राज्य के सैनिकों ने। राजा से विद्रोह कर सैनिकों ने राजा के सेनापति को बन्दी किया। सीधी बात है सेनापति !

पुष्यमित्र बार-बार सेनापति न कहो भद्र !

विक्रमसेन सुनें ! मैं आचार्य लोगों का, उपाध्याय और शिष्यमण्डली का, अयोध्या की प्रजा का बन्दी हूँ। आप इन सबके सेनापति हैं। आचार्य पतंजलि के प्रताप से सभी दिशाओं से तरुण भागे आ रहे हैं अयोध्या की रक्षा के निमित्त....आप उन सबके सेनापति हैं। वेद विद्या, शास्त्र-पुराण, रामायण-महाभारत के आप सेनापति हैं।

पतंजलि विक्रमसेन के भीतर देश का धर्म जागा है सेनापति ! बोलो... बोलो...धर्म के सुमेरु विक्रमसेन की जय....

नेपथ्य में (अनेक कण्ठ से) विक्रमसेन की जय....

विक्रमसेन हाय ! हाय ! संघस्थविर के गुप्तचर मेरे बन्धन को अब अभिनय कहेंगे आचार्य ! पाटलिपुत्र में कहा जायेगा आपने भेद-बुद्धि से अपने वश में कर लिया अथवा सम्मोहन का प्रयोग किया।

पतंजलि राजनीति मैं नहीं जानता भद्र ! आचार्य चाणक्य की व्यवहार-बुद्धि मेरे वश में नहीं है। जो हो गया...हो गया....गत की चिन्ता भी मैं नहीं करता।

पुष्यमित्र राजपत्र का भेद खोलकर तुमने आचार्य-मण्डली के साथ प्रजा को प्राण दान दिया है ! प्राणदान से बड़ा कोई दान नहीं है।
[विक्रमसेन का बन्धन खोलने लगता है।]

विक्रमसेन धर्म की शपथ है सेनापति ! मेरा बन्धन न खोलें !

पुष्यमित्र क्यों भद्र ! हमारे रक्षक बन्दी रहेंगे ?

विक्रमसेन इस बन्धन से देश का बन्धन खुलेगा सेनापति ! अनाचार का

पोत अतल में डूबेगा। अयोध्या की सेना इसी वन्धन से विद्रोही बनकर आपके साथ है। यवन सेना के साथ मथुरा और मध्यमिका की सेना जो यवन सेना का अंग बनकर आ रही है····इसी बन्धन से वह भी विद्रोह कर आपका साथ देगी। काशी-गोमठ की भी मगध सेना विद्रोह कर आपका अनुसरण करेगी ! इस पूरी सेना के प्रधान सेनापति पाटलिपुत्र का उद्धार करेंगे जैसे वाराह भगवान् ने पृथ्वी का उद्धार किया था।

पुष्यमित्र (पतंजलि से) आचार्य ! क्या सुन रहा हूँ !

पतंजलि विदिशा के शुंगवंशीय पुष्यमित्र जिस दिन राष्ट्रयज्ञ की आहुति अपने एकमात्र पुत्र को बनाने का संकल्प लेकर चले उसी दिन देश का धर्म जागा था भद्र ! विस्मय न करो। तुम्हारे संकल्प से विक्रमसेन के भी ज्ञानचक्षु खुले थे। पतंजलि की आँखें भी शास्त्र के पत्रों को छोड़कर मातृभूमि के दीन और आर्तरूप को देखने लगी थीं।

पुष्यमित्र (विक्रमसेन से) पाटलिपुत्र के उद्धार की योजना आप लोग बना चुके हैं।

विक्रमसेन बना चुके हैं सेनापति !

पुष्यमित्र मथुरा और मध्यमिका के मगध सेनापतियों से भी····(राजपत्र हिलाकर) यह राजमुद्रा से अंकित आदेशपत्र प्राप्त करना होगा !

विक्रमसेन यदि प्रमाद में उनसे कहीं छूट न गया होगा तो मिल जायेगा !

पुष्यमित्र योजना क्या है भद्र !

विक्रमसेन विस्तार का अवसर अभी नहीं है। संकेत में सुन लें। पाटलिपुत्र की ओर आप बढ़ते चलेंगे। मार्ग के सभी स्कन्धावारों की सेना आपकी सेना में मिलती जायेगी। गंगा के प्रवाह

में जैसे उत्तर और दक्षिण से नदी-नाले मिलते गये हैं सेना-पति ! गंगा और शोण के संगम पर जिस क्षण आप पहुँचेंगे शोणभद्र की भाँति पाटलिपुत्र की प्रधान सेना आपकी सेना में मिल जायेगी। शोणभद्र और गंगा के संगम का दृश्य उस समय आपकी सेना में उत्पन्न होगा।

पुष्यमित्र मेघवाहन खारवेल की सेना क्या करेगी आचार्य !

पतंजलि वह सेना यवन सेना को खदेड़कर सिन्धु के पार…फिर कुभा के पार….निषध पर्वत के उस पार करेगी।

पुष्यमित्र विचित्र संयोग है आचार्य !

पतंजलि कहो सेनापति !

पुष्यमित्र मेघवाहन ने भी मुझे वचनबद्ध कर सहायता स्वीकार की….

पतंजलि रुको मत कहते चलो !

पुष्यमित्र कलिंग की सेना और अयोध्या के तरुणों के साथ सेनापति विरूपाक्ष यवन सेना को दबाते चले जायेंगे जब तक उसे निषध के उस पार न कर लें। मेघवाहन का अडिग विश्वास है कि निषध से पूर्व प्रयाग तक के सैनिक यवनों को छोड़कर देश की सेना का साथ देंगे। प्रजा भी सब कहीं सहायता देगी ! विदेशी बर्बर का स्वागत मगध का राजा करे पर मध्यदेश, पंचनद और अपरान्त की प्रजा नहीं करेगी।

विक्रमसेन यह तो पश्चिम का अभियान हुआ सेनापति….पूर्व की योजना क्या है ?

पुष्यमित्र इस योजना को तुमने अत्यन्त सरल कर दिया बन्धु ! काशी की मगध सेना में मेघवाहन के गूढ़पुरुष काशी के आचार्यों के साथ कार्य कर रहे हैं। काशी की सेना ने जो साथ दिया तब तो….नहीं भी दिया तब भी आचार्य के साथ किसी प्रकार मैं काशी के पूर्व गंगा के दक्षिण सिद्धाश्रम में मेघवाहन से

मिलूँगा। आचार्य मेरे साथ रहेंगे। पुत्र के साथ भावी पुत्रवधू भी अपनी यवनी सहेलियों के साथ रहेगी।

विक्रमसेन इसके आगे की बात...

पुष्यमित्र मेघवाहन स्वयं सेनापति बनकर पाटलिपुत्र की प्रजा को जगाने चलेंगे। कलिंग से नयी सेनाएँ उनकी सहायता को आती रहेंगी। आटविक राजा भी विदेशी आक्रमण से क्रोधित हो उठे हैं। सिद्धाश्रम में उनके दूत आने लगे हैं। समय पर सेना के साथ आटविक राजा आ जायेंगे। प्रजा के कर्मठ नायक भी हमारी सहायता करेंगे पर उनका संकल्प अत्यन्त कठोर है आचार्य!

पतंजलि वह क्या सेनापति!

पुष्यमित्र आचार्य चाणक्य ने नन्दराज को सिंहासन से उतारकर मौर्य चन्द्रगुप्त को प्रतिष्ठित किया...

पतंजलि हूँ...कहते चलो...

पुष्यमित्र वही कार्य आपको करना पड़ेगा। बृहद्रथ को सिंहासन से उतारकर....

विक्रमसेन यही तो हमारा भी संकल्प है सेनापति! पर किसे? मेघवाहन किसे चाहते हैं?

पुष्यमित्र मुझ वामन को विराट् बनाना चाहते हैं। कहते हैं, आचार्य उनके संकल्प का....

मेधातिथि ब्राह्मण राज्य के लोभ में पड़ेगा भद्र! तब धर्म कहाँ रहेगा?

विक्रमसेन दक्षिण के सातवाहन भी ब्राह्मण रहे हैं आचार्य!

पतंजलि सातवाहन शातकर्णि की कथा दूसरी है भद्र! पतंजलि के यश में यह घटना कलंक बन जायेगी। प्रजा की रक्षा करने का अधिकार शास्त्र ने ब्राह्मण को दिया है। सेनापति और मन्त्री का कार्य ब्राह्मण पुरुष परम्परा से करता आया है। द्रुपद को पराजित इन सेनापति के पूर्वज द्रोणाचार्य ने किया था।

कौरव सेना के प्रधान सेनापति रहे। पर राजमुकुट न उन्होंने धारण किया और न उनके पुत्र अपराजित अश्वत्थामा ने। राजमुकुट धारण करने का अधिकार शास्त्र ब्राह्मण को नहीं देता।

विक्रमसेन मेघवाहन खारवेल कहेंगे, आचार्यों ने उनके साथ छल किया।

पतंजलि उनका समाधान मैं कर लूँगा भद्र ! मेरे आग्रह से, आचार्य मेधातिथि के आग्रह से जिन मेघवाहन ने प्रतिष्ठान की महारानी नागनिका को अभयदान देकर प्रतिष्ठान के सिंहासन की रक्षा की, महारानी के दोनों बालपुत्रों के जो संरक्षक हैं वह हमलोगों का आग्रह एक बार और मानेंगे। इस वसिष्ठ और बोधायनपीठ से आप आदेश दें तात ! इस परिस्थिति का समाधान क्या हो ?

मेधातिथि [जैसे ध्यानस्थ होकर] मगध की राजनीति का संचालन आठ मन्त्रियों से बनी मन्त्रिपरिषद् करेगी आचार्य ! ब्राह्मण पुष्यमित्र प्रधान सेनापति रहेंगे। मुकुट और छत्र धारण करने का अधिकार न इनको रहेगा और न इनके वंशजों को.... मगध का राजदण्ड इनके हाथ में रहेगा। देश, धर्म, प्रजा की रक्षा जब तक इनसे होती रहेगी, विदेशी यवन जब तक इनके प्रताप से काँपते रहेंगे तब तक मगध के सेनापति पुष्यमित्र कार्य सब राजा का करेंगे पर नाम से केवल सेनापति रहेंगे। जो कोई प्रमाद में उनके नाम के साथ राजा वाचक शब्द का प्रयोग कर देगा वह राजदण्ड का भागी बनेगा।

विक्रमसेन इनके पुत्र, पौत्र, अन्य वंशज भी क्या इसी पद के अधिकारी बनेंगे ?

मेधातिथि कालपुरुष अनागत भविष्य का दर्शन मुझे नहीं दे रहा है भद्र ! मगध की मन्त्रिपरिषद् पौरजन की सम्मति से इनके वंशजों के विषय में नियम बनायेगी।

पतंजलि मगध का सिंहासन सूना रहेगा तात ! सभाभवन से उठाकर कहीं अन्यत्र करना पड़ेगा ।

मेधातिथि उसी सभाभवन में, उसी सिंहासन पर आचार्य विष्णुगुप्त का राजशास्त्र जिसका नाम उन आचार्य ने अर्थशास्त्र दिया...रखा जायेगा । सेनापति पुष्यमित्र मन्त्रिपरिषद् के साथ उस ग्रंथ की नित्य पूजा, अर्चा, आरती करेंगे। अष्टांग राजतन्त्र को दृढ़ करने के लिए आचार्य ने इस ग्रंथ का निर्माण किया था । प्रथम यवन आक्रमण में आचार्य को देश का संकट देख पड़ा । वह आक्रमण न होता तो इस देश में एकच्छत्र राज्य का संकल्प आचार्य के मन में न आता । वही ग्रंथ इस युग का वेद है भद्र ! काव्य; पुराण, इतिहास, शास्त्र सबका योग इस ग्रंथ में है । वेदस्वरूप इसी लोकसंग्रह और प्रजा के अनुरंजन में समर्थ ग्रंथ को मगध के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर लोकजीवन और लोकधर्म को गति देनी है । आचार्य चाणक्य ने पतंजलि के रूप में अवतार लिया है ।

पतंजलि यह कहकर उन आचार्य का अनादर न करें तात !

मेधातिथि बोलो....बोलो....इस युग के चाणक्य पतंजलि की जय...जय ....जय....

नेपथ्य में [अनेक कण्ठ] इस युग के चाणक्य पतंजलि की जय...जय ....जय....

मेधातिथि वे आचार्य जो चन्द्रगुप्त से अश्वमेध का अनुष्ठान कराये होते तो उनका स्थापित राजवंश इतना संस्कारहीन न होता । राजदण्ड हाथ में लेकर धर्मविजय वंचना है भद्र ! संन्यासी, श्रमण और श्रावक धर्मविजय का सपना देखें । राजा को केवल शस्त्र से विजय लेनी है । मौर्य सम्पत्ति से श्रमण विदेश में धर्मविजय का स्वांग रच रहे हैं और उनके देश में यवन शस्त्र

विजय करते जा रहे हैं। उनकी यह विजय तब तक न रुकेगी जब तक एक बार (ऊपर हाथ से वृत्त बनाकर) यह आकाश अश्वमेध यज्ञ के धूम से और शंख की ध्वनि से न भर जाय !

पतंजलि इस आसन से आप यह कह रहे हैं तात !

मेधातिथि हाँ भद्र ! वसिष्ठ के इस आसन से····बोधायन के इस आसन से। पुष्यमित्र को कालपुरुष अश्वमेध पराक्रम बनायेगा। एक से काम नहीं चलेगा। दो अश्वमेध···शातकर्णि से जो सम्भव हुआ वह पुष्यमित्र को भी सम्भव करना पड़ेगा। शातर्कणि के यज्ञ कराकर रुद्रदत्त शुद्ध अर्थ में आचार्य बने थे। पुष्यमित्र को अश्वमेध का यजमान बनाकर पतंजलि अपने आचार्य पद को सार्थक करेंगे। पुरुष परम्परा से यज्ञ कराने वाले···यज्ञ-कुण्ड में आहुति देने वाले ही आचार्य कहे गये हैं। काया से यज्ञ-धूम की गन्ध निकले और आँखों में यज्ञ की शिखा लह-राती रहे···आचार्य का लक्षण यही है। इस निकष पर जो खरा उतरे। ज्ञान का निकष कर्म है और सभी कर्म यज्ञ से निकले हैं।

पुष्यमित्र सारा देश जिसे आचार्य मान चुका है····

मेधातिथि मैं भी उसे आचार्य मानता हूँ····पर····

पतंजलि तात की वाणी में सन्देह न करो भद्र ! ज्ञान का निकष कर्म है। सभी कर्म यज्ञ से निकले हैं····मनु यही कहते···बोधायन भी यही कहते···वसिष्ठ भी यही कहते। अश्वमेध का संकल्प तुम्हें करना है।

पुष्यमित्र इस संकल्प का आधार क्या होगा आचार्य ! इसकी प्रेरणा कहाँ से मिलेगी ?

पतंजलि यवन आक्रमण की हिंसा, हत्या, अनाचार····मथुरा और मध्यमिका के राक्षसीकाण्ड भद्र ! यह सब अभी पूरा नहीं है ?

पुष्यमित्र तब यवन कुछ संहार इस अयोध्या में भी करें। मेरी आँखें जिसकी साक्षी बनें जिसके भोग में मेरे हृदय में प्रतिकार की ज्वाला धधके····जिसे देखा नहीं····साक्षी बनकर जिसका भोग नहीं उठाया उसकी प्रेरणा निर्बल होगी···उसका आधार भी कच्चा होगा।

[साँस में वेग, आँखें अंगारा बन जाती हैं।]

पतंजलि मेघवाहन की सेना और सेनापति के सामने अयोध्या का संहार होगा भद्र ! क्या कह रहे हो ?

पुष्यमित्र बिना इसके अश्वमेध का संकल्प कठिन होगा आचार्य ! सेनापति विरूपाक्ष शत्रु सेना को अयोध्या में प्रवेश का मार्ग दें···· नगर-निवासी अपनी आँखों अपने गेह का, सम्पत्ति का संहार देखें।

नेपथ्य में (उत्साह की ध्वनि) स्वीकार है····स्वीकार है···

नेपथ्य में हमारे गेह में नारियाँ नहीं हैं, गौएँ नहीं हैं···ग्रन्थ भी नहीं हैं। धर्म की हानि का भय नहीं है। धन की हानि की चिन्ता नहीं है।

पुष्यमित्र यवन यज्ञ नहीं करते···केवल अपनी जययात्रा के मार्ग पर ग्राम····नगर···भस्म करते चलते हैं। नगर के गेह जलेंगे, लपटें आकाश चाटेंगी !

पतंजलि उन लपटों का दर्शन तुम करोगे··· अश्वमेध के संकल्प का आधार वही बनेंगी और प्रेरणा भी····

पुष्यमित्र इस अपराजित नगरी के विक्रम का स्वाद भी शत्रु को मिले आचार्य ! और जो दैव अनुकूल हो तो वह दम्भी दत्तमित्र यहीं बन्दी भी बने !

मेधातिथि बोलो···बोलो····सेनापति पुष्यमित्र की जय····जय····जय···

नेपथ्य में (अनेक कण्ठ) सेनापति पुष्यमित्र की जय···जय···जय···

मेधातिथि दत्तमित्र बन्दी कैसे बनेगा सेनापति !

पुष्यमित्र मेघवाहन ने उसे जो श्वेतगज दिया है उसका पीलुक कलिंग का है। किसी दूसरे के वश में वह गन्धगज नहीं आयेगा। उस प्रथम यवन आततायी अलिकसुन्दर के किसी पूर्वपुरुष ने भी श्वेत गंधगज कभी नहीं देखा होगा आचार्य ! दत्तमित्र की बुद्धि उसे देखते ही मोह में पड़ जायेगी ?

पतंजलि मेघवाहन का विश्वास वह सद्धर्मी यवन कर लेता पर उसका गुरु नागसेन नहीं करेगा। जैन खारवेल ने ब्राह्मण महारानी नागनिका की रक्षा की है। श्रवण मुण्डी इस घटना को अपने विरोध में ब्राह्मण और जैन का षड्यन्त्र मान रहे हैं।

मेधातिथि अबोध पुत्रों के साथ अबला की रक्षा भी षड्यन्त्र है आचार्य ! शातकर्णि की विधवा पर खारवेल आक्रमण कर कैसी कीर्ति कमाता ?

पतंजलि आचार-विचार, व्यवहार की बात मुण्डी कभी नहीं सोचते तात ! शातकर्णि की मृत्यु के दिन प्रतिष्ठान पर खारवेल धावा करता तब धर्मरक्षित के साथ उसके चेले सद्धर्म की जय बोलते। ऐसा नहीं हुआ, अब इनके लिए मेघवाहन यश के नहीं निन्दा के पात्र बन गये हैं। (पुष्यमित्र से) उस गज पर कोई आये सेनापति ! पीलुक क्या करेगा यह कहो ?

पुष्यमित्र पीलुक के संकेत पर वह गज बाण के वेग में सरयू में धँसेगा। नक्र की भाँति वह जल में डुबकी लेगा जो कोई पीठ पर होगा सरयू की धारा में बहने लगेगा।

पतंजलि हाँ···तब हमारे केवट उसे बन्दी बना लेंगे ! योजना अच्छी है भद्र ! [दक्षिण दिशा में कहीं दूर शंख, शृंग, भेरी की ध्वनि होती है।]

पुष्यमित्र शत्रु सेना तमसा के दक्षिण पहुँच रही है आचार्य ! सेनापति विरूपाक्ष अब पहले नीति का रूपक रचें···मित्र बनकर यवन सेना को नगर में प्रवेश का मार्ग दें···

पतंजलि (दायीं भुजा ऊपर उठाकर) अश्वमेध का संकल्प तुमसे जो कराये भद्र! सब करो। देव सेनापति स्कन्द ने देवलोक को अभय किया था तुम हमारे मनुष्य लोक को अभय करो!

मेधातिथि विजय तुम्हारे आगे चले सेनापति!

पुष्यमित्र आपलोगों के अमोघ आशीर्वाद से कृतार्थ हूँ। आपलोग यहीं रहें। जो बन्धु मेरे साथ आना चाहें आयें।

नेपथ्य में स्कन्द के अवतार सेनापति पुष्यमित्र की जय हो...जय हो.... जय हो!

[पतंजलि, मेधातिथि और विक्रमसेन को छोड़कर सब चले जाते हैं।]

पतंजलि मगध सेनापति के साथ मुझे भी वहीं जाने का आदेश दें तात!

मेधातिथि इस शरीर के बाहर वाले तुम मेरे प्राण हो। मैं भी तुम्हारे साथ....

पतंजलि इस आसन को सूना छोड़कर तात!

मेधातिथि पर तुम यहाँ से न हटने की प्रतिज्ञा ले चुके हो। लोक में विक्षोभ होगा।

पतंजलि इस आसन से न हटने की प्रतिज्ञा थी। इस पर अब आप विराजमान हैं। वह प्रतिज्ञा अब आपकी है। प्रतिज्ञा के बन्धन में आप बँधे हैं तात! मैं अब उससे मुक्त हूँ।

मेधातिथि जाओ भद्र, शत्रु तुम्हारी छाया भी न छू सकें।

[विक्रमसेन के साथ पतंजलि का प्रस्थान।]

मेधातिथि सुनते हैं गोत्र के आदिप्रवर्त्तक महर्षि वसिष्ठ ने अपने हाथ से इस वटवृक्ष को ब्रह्मावर्त के सरस्वती तट से ले आकर सरयू के इस तट पर रोपा था। वसिष्ठ गोत्र की गंगा यहीं से चली थी जिसमें अन्य सभी ऋषियों के गोत्र मिलते गये। जिस नाम के उच्चारण से वाणी पवित्र होती है, जिसके स्मरण से चित्त पवित्र होता है, जिसके ध्यान से इंद्रियों के साथ काया

पवित्र होती है...उन्हीं भगवान् वसिष्ठ के हाथ से रोपे इस वृक्ष ने कालपुरुष को कितनी लीला देखी...नटराज का कितना नृत्य देखा...

[वृक्ष के ऊपरी भाग को ध्यान से देखने लगते हैं। धारिणी के साथ अग्निमित्र प्रवेश करता है। मेधातिथि को देखकर सहसा रुक जाता है।]

अग्निमित्र इतने ध्यान से आचार्य ऊपर क्या देख रहे हैं प्रिये !

धारिणी (ओठ पर तर्जनी रखकर) अरे ! संस्कार के पहले इस शब्द से सम्बोधन का अधिकार शास्त्र कहाँ देता है ?

अग्निमित्र त्रिलोकजयी पुष्पधन्वा पहले आया। पुरुष के कण्ठ से जो पहली वाणी फूटी वह कुछ ऐसी ही थी। विवाह की पद्धति पीछे चली और शास्त्र भी पीछे बने !

धारिणी अपने पक्ष की बात कहने में आचार्यपुत्र पटु हैं।

अग्निमित्र आर्यपुत्र क्यों नहीं कहतीं।

धारिणी संस्कार की ब्राह्मविधि जब पूरी हो जायेगी। उत्तरीय की गाँठ बाँधकर अग्नि की सात परिक्रमा जब मेरे साथ पूरी कर लोगे। भगवान् वसिष्ठ और भगवती अरुन्धती का दर्शन जब हम एक साथ कर लेंगे तब....अभी केवल आचार्यपुत्र हो !

अग्निमित्र और क्या नहीं हूँ वह भी कह दो....(मन्द हँसी)

धारिणी अभी कह देने पर वह सम्बोधन नीरस हो जायगा आचार्यपुत्र ! मेरे मन पर अभी प्रतिष्ठान के राजभवन का अंकुश रहने दो !

मेधातिथि (ऊपर देखते हुए) दो शाखाओं के बीच में घने पत्तों के घेरे में कौन खड़ा है ! पुरुष है तो वहाँ पहुँचा कैसे ? कौन हो तुम इतने ऊँचे, ऐसे अगम्य स्थान पर ...यक्ष हो....गन्धर्व हो.... असुर हो....किन्नर हो....श्रीराम के दूत हनुमान से इस वृक्ष पर छिपकर तुम कौन खड़े हो...बोलो...महाकाल का उपासक मेधातिथि तुमसे पूछ रहा है तुम कौन हो ? (आचार्य का स्वर

क्रमशः कठोर होता जाता है।) नहीं बोलोगे ? अच्छा....
(मेधातिथि दायें हाथ से शंख उठाकर वेग में फूँकते हैं जिसकी ध्वनि दूर तक गूँजती है।)

अग्निमित्र (धारिणी के साथ वेग में आसन के निकट पहुँचकर) क्या है आचार्य ! ऊपर कोई है ?
[पीले वस्त्रों में दो ब्रह्मचारी भागते हुए आते हैं।]

दोनों ब्रह्मचारी क्या देख रहे हैं आचार्य !

मेधातिथि (धारिणी से) तुम वृक्ष की छाया से हटकर खुले आकाश के नीचे चलो पुत्री !
[धारिणी विस्मय में पीछे हटती है।] अब तुम लोग देखो पुत्र !
[ऊपर हाथ से संकेतकर] वृक्ष के उस निविड़ भाग में कोई खड़ा है या मेरी दृष्टि का भ्रम है ?
[तीनों ध्यान से ऊपर देखते हैं तभी पत्थर का एक खण्ड मेधातिथि के आगे कुल आठ अंगुल दूर गिरकर कठोर ध्वनि करता है।]

अग्निमित्र हरे ! हरे ! यह कोई पिशाच है तात ! देह इसकी नर की है।

पहला ब्रह्मचारी नग्न श्रमण मुण्डी है, कटि भाग में कौपीनभर है।

दूसरा ब्रह्मचारी हाय ! यह पत्थर आचार्य के ब्रह्मरन्ध्र पर पड़ता तो क्या होता ?
[वृक्ष के ऊपर मुण्डी ठठाकर हँसता है।]

पहला ब्रह्मचारी तेजोलेष्मा का प्रयोग करें तात ! अंग अंग से लपटें फेंकते यह नीचे आ जाय !

मेधातिथि वसिष्ठ से बड़ा योगी कौन होगा ? जिनकी धेनु की शक्ति से विश्वामित्र की सेना हार गयी। पर क्या संकट की किसी वेला में उन भगवान् ने योगशक्ति का प्रयोग किया ?

अग्निमित्र (धनुष पर बाण चढ़ाकर) नीचे उतर पापी....इस मर्मभेदी बाण को देख ले और नीचे उतर आ...

श्रमण (ऊपर से) अभयदान दो....तुम संख्या में अधिक हो !

मेधातिथि उतरो श्रमण ! इस परम पवित्र आसन से तुम्हें अभय देता हूँ।

श्रमण (ऊपर से) तुम्हारी बात का विश्वास कैसे करूँ ?

अग्निमित्र तब इस बाण का विश्वास करो मुण्डी !

मेधातिथि रुको पुत्र ! वसिष्ठ के लगाये इस वृक्ष पर हत्या न हो !

श्रमण (ऊपर से) मैं आ रहा हूँ। तथागत तुम्हें दण्ड देंगे।

मेधातिथि तथागत निर्वाण देते हैं श्रमण ! दण्ड भगवान् श्रीरामचन्द्र देते हैं।

अग्निमित्र (विस्मय में) वानर भी इस त्वरा से नीचे न उतरेगा। (श्रमण अभी धरती पर उतर भी नहीं पाया, अग्निमित्र दौड़कर उसके कण्ठ में धनुष की प्रत्यञ्चा डाल देता है, दोनों ब्रह्मचारी उसकी दोनों बाहें पकड़कर उसे आसन के निकट ले आते हैं।)

मेधातिथि (उसकी ओर ध्यान से देखकर) इस वृक्ष पर तुम क्यों चढ़े मुण्डी ? कितनी देर से तुम इस पर हो ? किस देश में तुम्हारा जन्म हुआ ? तथागत के धर्म की दीक्षा किसने दी ?

श्रमण एक पहर रात से मैं इस वृक्ष पर हूँ। जन्म, जाति, देश तथागत के धर्म में नहीं हैं। सारी धरती अपनी है, सभी लोग अपने हैं। जाति, देश का पाखण्ड तुम ब्राह्मण आचार्य चलाते हो ?

मेधातिथि (हँसकर) अपने गुरु का नाम कहो।

श्रमण (पेट पर हाथ फेरकर) यही पेट मेरा गुरु है ! बिना किसी कामधाम के शास्ता की दया से यह चल रहा है। तुम ब्राह्मण तो भीख भी नहीं माँगने देते। भिक्षाटन करने वाले की तुम निन्दा करते हो। तथागत ने भिक्षाटन किया, हम क्यों न

करें ? तुम दिन में तीन बार स्नान-ध्यान करने को बात कहते हो। पेट चलाने के लिए श्रम करने को कहते हो। पाटलिपुत्र के संघाराम को चलकर देखो जहाँ बिना किसी भी श्रम के सबको दिव्य भोजन मिलता है। मगध का राजा हमारा है, अब पश्चिम का यवन राजा भी हमारा हो गया। है कोई राजा तुम्हारे साथ ? बोलो ...कोई हो तो कहो।

अग्निमित्र (क्रोध में पैर पटककर) चुप रह पापी ! श्रम करने वाले दूसरे हों और दिव्य भोजन करने वाले दूसरे...

मेधातिथि क्रोध न करो प्रियदर्शन ! यह श्रमण सत्यवादी है। पेट इसका गुरु है। पेट चलाने के लिए इसने यह रूप बनाया। गौतम का निर्वाण अब पेट चलाने का राजमार्ग है। इसे देखो....इसके दो टूक सत्य को देखो। देशभर में जो इनकी संख्या अब लाखों की हो गयी है केवल पेट की सुरक्षा के कारण है।

अग्निमित्र वह सुरक्षा मिटानी है आचार्य ! दो हाथ, दो पैर, नाक, कान, आँखें दैव से इन्हें क्यों मिले हैं जब उनसे इन्हें काम ही नहीं लेना है ?

श्रमण पैर से चलकर भिक्षाटन होता है। हाथों में भिक्षा ग्रहण की जाती है। यह काम नहीं है ? सुरा के रंग में तथागत की मुद्रा में समाधि लगाना श्रम नहीं है ? सद्धर्म में बड़ा सुख है ब्राह्मण ! तुम्हारे वेद के प्रपंच में सुख कहाँ है ? ब्राह्ममुहूर्त में स्नान करने में कितना क्लेश है ! उसके बाद ही कुण्ड में समिधा देकर आग जलाना, आहुति देना यह सब प्रपंच नहीं तो....

अग्निमित्र (पैर पटककर) जीभ खींच लूँगा मुण्डी ! ब्राह्ममुहूर्त के स्नान में भी दोष देख रहा है तू।

श्रमण तुम लोग मन तो धोते नहीं देह धोते हो !

अग्निमित्र (क्रोध में काँपकर) इस मुण्डी का उपचार करने दें आचार्य !

मेधातिथि शुद्ध काया में ही शुद्ध मन रहता है श्रमण ! बिना देह के आत्मा का बोध नहीं होता।

श्रमण सद्धर्मी आत्मा नहीं मानते।

मेधातिथि (हँसकर) केवल देह और इसके भोग मानते हैं।

अग्निमित्र इस पत्थर के साथ पाटलिपुत्र इसे भी ले चलना होगा आचार्य।

मेधातिथि इसके इस कर्म का न्याय वहीं होगा प्रियदर्शन!

अग्निमित्र इसी वृक्ष के साथ इसे बाँध दें। भागने का अवसर न मिले। चलो मुण्डी!

[दोनों ब्रह्मचारियों के साथ अग्निमित्र उसे लेकर जाता है। दक्षिण दिशा की ओर कोलाहल और अनेक प्रकार की भयानक ध्वनि होती है।]

धारिणी देखें आचार्य! अयोध्या के दक्षिण भाग के भवन जल रहे हैं। लपटें घू घूकर आकाश चाट रही हैं।

मेधातिथि हाँ पुत्री! रावण की लंका तब जली थी। अब श्रीरामचन्द्र की अयोध्या जल रही है। आचार्य चाणक्य ने जिस राजकुल की प्रतिष्ठा की वही राजकुल देश की प्रजा का, धर्म का, नगरों का संहार कर रहा है। (सामने सरयू की धार की ओर देखकर) देव दायें हैं पुत्री! देख रही हो दो यवन और एक श्रमण को लेकर मेघवाहन का गन्धगज सरयू की धारा काटकर बढ़ा जा रहा है।

धारिणी हाँ तात! बीच धार में मन्दराचल से जैसे समुद्र मथा गया श्वेतगज सरयू में चक्कर दे रहा है। तीनों धार में गिरकर बह चले तात! पीलुक संकेत दे रहा है।

[तट की ओर कोलाहल और हर्ष की ध्वनि होती है।]

नेपथ्य में यवन सेनापति को बन्दी करो वीरो!

नेपथ्य में अब कहाँ जायेगा?

[पर्दा गिरता है।]

तीसरा अंक

[पाटलिपुत्र में मौर्य राजभवन, जिसके दायें संस्थागार है। यह संस्थागार अत्यन्त विशाल अनेक आकार प्रकार के आसनों से, भद्रपीठों से भरा है। उत्तर की ओर बीच में सिंहासन है जिसके वितान में मोती और विभिन्न रत्नों की झालर लगी है। वितान के चार स्तम्भ नीचे सोने के सिंह के आधार से उठे हैं। सिंहों की आँखों में हीरे चमक रहे हैं। चारों ओर दीवालों पर अनेक भाव मुद्रा के अनेक यक्षी के चित्र बने हैं। चारों दिशाओं के विशाल द्वार सुन्दर काष्ठ, हाथीदाँत, सोने, चाँदी और रत्नों के योग से बने हैं। गन्धर्व चित्रों के बीच बीच में सिंह शीश और वाद्ययन्त्र, वीणा आदि टँगे हैं। सिंहासन के दोनों ओर दो स्फटिक मंच हैं। अन्य तीन दिशाओं में ऐसे ही एक एक मंच है। ऊपर छत में नक्षत्र-मण्डल में चन्द्र चाँदनी रात के आकाश से होड़ ले रहा है। संस्थागार के दक्षिण विस्तृत उद्यान में लताएँ झूम रही हैं। वृक्षों से फूल चू रहे हैं। वायु में मनोहर गन्ध और पक्षी बोल रहे हैं। सिंहासन के पीछे रत्नजटित द्वार गंगा की ओर खुला है। पूर्व के द्वार के सामने राजपथ के दोनों ओर वृक्ष फूलों से लदे हैं। पश्चिम के द्वार के सामने भी इसी प्रकार का राजपथ है। सिंहासन पर मौर्य महाराज बृहद्रथ बैठे हैं। उनकी काया स्थूल हो गयी है, पेट निकला है। उनकी दायीं ओर मंच पर श्रमणसंघ के प्रधान स्थविर धर्मरक्षित बैठे हैं। महाराज के दोनों ओर सिंहासन के दण्ड पर बायाँ हाथ टेके दायें हाथों में चमर लिये सुन्दरी यवनी खड़ी हैं। बृहद्रथ की आकृति पर भय और चिन्ता छायी है। नेपथ्य में एक ही साथ कई शंख बज उठते हैं।]

बृहद्रथ भन्ते ! सुन रहे हैं ?

धर्मरक्षित सुन रहा हूँ राजन्! धरती से शास्ता का धर्म उठ रहा है। उनके धर्म में शंख की हिंसक ध्वनि किसी ने नहीं सुनी!

[मन्त्रि-परिषद् के सदस्य जिनकी संख्या आठ है पूर्व के द्वार से प्रवेश करते हैं। वृहद्रथ को दोनों हाथ जोड़कर पूर्व के मंच पर बैठते हैं।]

बृहद्रथ महामन्त्री आप इधर आयें। (बाँयें के मंच की ओर संकेत कर) मन्त्रि-परिषद् के सदस्य इधर आयें।

धर्मरक्षित मन्त्रिपरिषद् राजा के निकट बैठता है आयुष्मान् सोमशील ?

सोमशील मन्त्री के आसन पर आप बैठे हैं भन्ते! मन्त्री सिंहासन के दायें बैठता है। बायें तो सेनापति का आसन है। इन दोनों अधिकारों का भोग इस समय अकेले आप कर रहे हैं।

धर्मरक्षित ऐं! मन्त्री! दोनों अधिकारों का भोग मैं कर रहा हूं! परिव्रज्या लेकर मैं मन्त्री और सेनापति दोनों हूँ ?

सोमशील हाँ भन्ते! मुझे भी विस्मय है यह कैसे हुआ! शास्ता के शासन का भार आप उठाते और राज्य शासन का भार मन्त्रि-परिषद् और सेनापति पर रहने देते। शास्ता के शासन का रथ भी चलता रहता और राज्य शासन का रथ भी। कई वर्ष हुए जब राज्य शासन का रथ राजा को विवश कर आपने तोड़ दिया। इस समय राजा भी आपके शास्ता के रथ पर हैं।

बृहद्रथ राजद्रोह की बात कर रहे हो मन्त्री! (क्रोध की मुद्रा)

सोमशील राजाज्ञा का पालन इस सेवक ने किया है महाराज! आज्ञा मिली...मन्त्रि परिषद् के सदस्यों को बटोरकर सेवा में प्रस्तुत हुआ। पूरे पाँच वर्ष बीत गये महाराज! जिस संस्थागार में मन्त्री सूर्योदय के साथ नित्य प्रवेश करता था और दूसरे याम का घण्टा बजने पर इसे छोड़ता था वह अपने सहकारी सदस्यों के साथ पांच वर्ष बिताकर आपकी आज्ञा के सामने नतमस्तक होकर प्रवेश कर रहा है।

बृहद्रथ इस अवधि में कोई आवश्यक कार्य नहीं आया मन्त्री !

सोमशील सूर्य की किरणें जगत् पर नित्य बरसती हैं महाराज ! सूर्य के स्थान पर आप हैं। हम सभी सेवक मन्त्री, सेनापति, न्याय, दण्ड के प्रतिपालक आपकी किरणें हैं। सूर्य की आवश्यकता जगत् को नित्य है ठीक उसी प्रकार मन्त्रिपरिषद् और सेना के साथ राजा की आवश्यकता प्रजा को नित्य है।

धर्मरक्षित प्रजा पर संकट है मन्त्री ! शोणभद्र और गंगा के संगम के पश्चिम साम्राज्य की सभी सेनाएँ विद्रोह कर चुकी हैं। देवप्रिय अशोक ने कभी कलिंग का संहार किया था उसके प्रतिशोध के लिए खारवेल चढ़ा आ रहा है।

सोमशील यह सूचना आपको कैसे मिली भन्ते ! जो सूचना मौर्य नरेश वृहद्रथ को देनी चाहिए। उनका यदि कहीं कोई मन्त्री हो, सेनापति हो, कोई गूढ़पुरुष हो उसे देनी चाहिए। महाराज के मन्त्री, सेनापति, गूढ़पुरुष का कार्य यह सूचना देकर आप कर रहे हैं। परिव्रज्या लेकर···अब आप मेरी बात मान लें।

धर्मरक्षित (अधीर होकर) क्या बात मान लूँ मन्त्री !

सोमशील मौर्य महाराज के मन्त्री आप हैं ! सेनापति आप हैं ! गूढ़पुरुष आपके शिष्य हैं। सन्धि विग्रह का संचालन इस संस्थागार से नहीं, आपके संघाराम से होता है। समूचे भारतवर्ष में केवल आपका श्रमण धर्म रहे। वैदिक मिट जायँ। जैन मिट जायँ इसके लिए पहले आपने खारवेल को निमन्त्रित किया है···· पहले वैदिक मिटें फिर दत्तमित्र को निमन्त्रण दें वह जिन धर्म को मिटा दे।

बृहद्रथ मंत्री ! (क्रोध की ध्वनि, भौं टेढ़ी पड़ गयी है।)

सोमशील मैं आपकी प्रजा हूँ महाराज, मंत्री नहीं हूँ। परिषद् के ये सभी सदस्य केवल आपकी प्रजा हैं इनमें कोई मंत्रिपरिषद् का

सदस्य नहीं है। यदि मैं असत्य कह रहा हूँ तो इन सदस्यों की मंत्रणा से आप मुझे दण्ड दें।

परिषद् के दो सदस्य आप सत्य कह रहे हैं। हममें कोई मंत्री नहीं है।

दो अन्य सदस्य हमारी मंत्रणा का अधिकार तो उस मुण्डी के हाथ में है।

धर्मरक्षित सभी राजद्रोही हो गये हैं राजन्! आपका मंत्री कह रहा है मैंने खारवेल को निमंत्रित किया है...पाटलिपुत्र के संहार के लिए...प्रजा के संहार के लिए....सद्धर्म के संहार के लिए....

सोमशील कालसर्प से भयानक तुम्हारा विष मौर्य नरेश पर चढ़ा है मुण्डी! मंत्री तुम हो मैं नहीं हूँ। पाँच वर्ष में पाँच पल भी मंत्र देने का अवसर मुझे नहीं मिला। किस बात में मंत्री मैं हूँ। मंत्र देने का कार्य तो बराबर तुम करते रहते हो। महाराज की लाखों प्रजा के वध का पाप तुम्हारे सिर है। तुम्हारे सद्धर्म में राजनीति खेलने की प्रथा पुरानी है। तुम्हारे शास्ता भी मगध और वैशाली के बीच राजनीति खेले थे।

धर्मरक्षित शास्ता की निन्दा कर रहे हो मंत्री!

सोमशील मंत्री तुम हो भन्ते! मुझे बार बार मंत्री न कहो! मैं केवल सत्य कह रहा हूँ तुम्हारे शास्ता भी राजनीति खेले थे। सत्य कहना निन्दा नहीं है। विदेशी आततायी तुम्हारे लिए सदैव प्रिय हैं पर देशी वैदिक आचार्य और जैन श्रावक सदैव शत्रु हैं।

बृहद्रथ मंत्री! मेरी बात सुनें।

सोमशील (हाथ जोड़कर) मुझे केवल सोमशील कहें राजन्! मंत्री कहकर मेरा उपहास न करें। मथुरा, मध्यमिका और साकेत मेरे मंत्रित्वकाल में नहीं भस्म हुए! आचार्य और ब्रह्मचारी जो उद्धत यवन सैनिकों के हाथ मारे गये, ग्रन्थागार फूँके गये, शंकर और बिष्णु के मन्दिर ध्वस्त किये गये, इन सबका उत्तर-दायी आप हम अभागों को न बनायें।

कई सदस्य नहीं ···नहीं···इस अनाचार के उत्तरदायी नहीं बनेंगे।
धर्मरक्षित (उद्वेग में) अब आप मेरे साथ····
बृहद्रथ (चिन्ता में) हाँ ··हाँ····भन्ते !
धर्मरक्षित यहाँ अब आपकी रक्षा नहीं है राजन् ! मेरे साथ संघाराम चलें।
सोमशील मौर्य महाराज को परिव्रज्या दोगे श्रमण ?
धर्मरक्षित जगत् के भय से मुक्ति का मार्ग केवल परिव्रज्या है ब्राह्मण ! इसी बल से शास्ता जगत् के भय से छूटे थे। तुम ब्राह्मण जिस परिव्रज्या का उपहासकरते हो वही मुक्ति का मार्ग है।
सोमशील यह कर्मलोक है श्रमण ! इससे मुक्ति का मार्ग भी कर्म है। तुम्हारे देवप्रिय अशोक ने भी परिव्रज्या नहीं ली थी। तुम्हारे अधिकार का आज अन्त है। महाराज सिंहासन से उठ नहीं सकते।
धारिणी (अग्निमित्र के साथ प्रवेशकर) नहीं उठ सकते ! नहीं उठ सकते महामंत्री ! जब तक आचार्य मेधातिथि न आ जायँ···· जब तक आचार्य पतंजलि न आ जायँ····जब तक आर्य सेनापति न आ जायँ।
बृहद्रथ (विस्मय से धारिणी की ओर देखने लगता है।) तुम··· तुम···तुम कौन हो किशोरी ! इस नगरी की बाला तो तुम नहीं हो !
धारिणी इस नगरी की सभी बालाओं को आप देख चुके हैं महाराज ?
बृहद्रथ पिछले वसन्तोत्सव में तो देखा होता !
धर्मरक्षित शत्रु मित्र का विवेक न भूलें राजन् !
बृहद्रथ यह कन्या भी किसी का शत्रु हो सकती है भन्ते !
धर्मरक्षित यह विषकन्या है। इसके अमोघ विष की कहीं औषधि नहीं है।
अग्निमित्र सावधान मुण्डो···(क्रोध में पैर पटकता है।)

धर्मरक्षित जानता हूँ तरुण शुंग ! तुम्हारे लिए यह अमृत की लता है। तुम्हारी भावी पत्नी है। अयोध्या में तुम्हारे हाथ में इसका हाथ बूढ़े ब्राह्मण मेधातिथि ने दिया और इसी संस्थागार के दक्षिण उपवन में तुम्हारे साथ इसका विवाह भी होगा।

अग्निमित्र आचार्य मेधातिथि कहो श्रमण ! वे केवल बूढ़े ब्राह्मण नहीं हैं।

धर्मरक्षित आठ दिन से तुम दोनों पाटलिपुत्र में राजा के विरोध में बिद्रोह फैलाते रहे हो। महाराज के दण्डपाल तुम्हें न पकड़ सके। तुम दोनों का स्थान बन्दीगृह था और तुम दोनों महाराज के सिंहासन के निकट पहुँचकर भी अभी निर्भय और स्वतन्त्र हो !

बृहद्रथ दण्डपाल…

दण्डपाल (प्रवेशकर) आदेश दें महाराज !

बृहद्रथ इन दोनों को बन्दी करो !

अग्निमित्र (खड्ग खींचकर) आ जाय जिसे यमराज का निमन्त्रण मिला हो ! देवप्रिय अशोक के वंशज कभी इस संस्थागार में शस्त्र लेकर तो आये नहीं। शस्त्र की सिद्धि आज यह भी देख ले।

दण्डपाल रुको भद्र ! ब्राह्मण वध का पाप बलात् मुझ क्षत्रिय पर मत लादो।

अग्निमित्र ओ ! हो ! जैसे तुम मेरे वध में समर्थ हो सकोगे। निरस्त्र दण्डपाल ! आचार्य चाणक्य के समय इस नगरी का वणिक् भी शस्त्रधारी था। समय का फेर देखो इस नगरी के दण्ड-पाल के हाथ में भी शस्त्र नहीं है। बिना दण्ड का दण्डनायक कैसा जी ? जिसके हाथ में शस्त्र नहीं है वह सब कहीं लात खायेगा। वह इस नगरी का दण्डपाल हो या मौर्यसम्राट् वृहद्रथ….(क्रोध में काँपने लगता है।)

सोमशील अपनी जीभ पर अंकुश लगाओ ब्रह्मचारी ! आचार्य पतंजलि तुम्हें क्षमा नहीं करेंगे। महाराज का अनादर वे भी नहीं सहेंगे।

बृहद्रथ — अभी यह ब्रह्मचारी हैं फिर यह कन्या····

दण्डनायक — जी अभी यह ब्रह्मचारी हैं···कुमारी इनकी वाग्दत्ता वधू हैं पर जब तक विवाह न हो जाय ब्रह्मचारी हैं।

बृहद्रथ — इन दोनों को तुम पहले से जानते हो?

दण्डनायक — हाँ महाराज! यवनों ने मथुरा, मध्यमिका, साकेत और इन सबके मार्ग में जितना संहार किया···इन दोनों के मुख से नगर-वासी पिछले आठ दिनों से सुन रहे हैं।

धर्मरक्षित — इन राजद्रोहियों को महाराज के आदेश पर भी कोई दण्ड-नायक बन्दी नहीं कर सका जिनकी प्रधान संख्या आठ है और जिनके सहकारी दण्डनायक अस्सी हैं जिन सबके अधीन दण्ड-धर आठ सौ से भी अधिक हैं।

दण्डनायक — यह कार्य कठिन है भन्ते! आपके मत में ये दो राजद्रोही हैं। इनके वन्दी बनने पर तो पाटलिपुत्र की सारी प्रजा, नर, नारी; वृद्ध, तरुण, किशोर, पौगण्ड और बालक भी राजद्रोही बन जाते!

बृहद्रथ — सो कैसे? (अत्यन्त विस्मय की मुद्रा जैसे साँस रुक जाती है।)

दण्डनायक — अभयदान दें महाराज! यवन अनाचार का वर्णन जब ये दोनों वारी बारी से करने लगते हैं···सारी घटनाएँ चित्र बनकर लोगों के सामने खड़ी हो जाती हैं···कुछ फूटकर रोते हैं···कुछ उन्माद में हँसते हैं····कुछ की साँस सर्प की फुफकार बन जाती है। अनेक आँखें चक्र की गति में ऐसे घूमने लगती हैं मानो इस विश्वचक्र के संहार के लिए अनेक चक्र एक साथ चलने लगे हों!

धर्मरक्षित — आपके प्रधान दण्डपाल कवि वन गये हैं महाराज!

दण्डनायक — हाँ भन्ते! जो महापुरुष इनके वर्णन को कवि वाणी दे सकेगा वह इस युग का विधाता बन जायेगा। उसका कविकर्म काल की ध्वजा बनकर इस देश के लोक मन के आकाश में सदैव

लहराता रहेगा। मौर्य सेना के सेनापति इन्हें छू लेने का साहस नहीं कर सकते। दण्डपाल और दण्डधर की बिसात क्या है ?

बृहद्रथ इनकी रक्षा को कौन खड़ा होगा भद्र !

दण्डनायक इस नगरी के बाल-वृद्ध, तरुण, किशोर सब ! इनके चारों ओर इस पुरी की किशोरियों का व्यूह है तथा तरुणी, प्रौढ़ा, वृद्धा, व्यूह बनाये खड़ी हैं। फिर बाल, किशोर, तरुण, प्रौढ़ और वृद्धों के व्यूह हैं। चक्रव्यूह से अधिक दुर्गम यह व्यूह है महाराज ! इसकी कल्पना से हृदय हिल उठता है। इस व्यूह का भेदन कौन करेगा ? कितनी प्रजा के संहार पर ये बन्दी बनेंगे।

बृहद्रथ यहाँ कौन इनके रक्षक हैं दण्डनायक ?

दण्डनायक संस्थागार के सब ओर नर-नारी जुटे हैं। सबके हाथ में शस्त्र हैं।

धर्मरक्षित तब कहो पाटलिपुत्र के राजा-रानी इस समय यही दोनों हैं।

दण्डनायक अपने मुँह से कैसे कहूँ भन्ते ! इस बात में सन्देह न करें भन्ते ! उठकर देखकर लें। (पूर्व द्वार के बाहर कोलाहल होता है। कई शंख बजते हैं फिर सभी ओर की शंखध्वनि से दिशाएँ गूँज जाती हैं। संस्थागार हिल उठता है।)

धर्मरक्षित (कानों पर दोनों हाथ रखकर) प्रजा में हिंसा का ज्वर चढ़ा है राजन् ! मैं यहाँ नहीं रुक सकता।
[आसन छोड़कर उठता है।]

अग्निमित्र (हाथ से संकेतकर) बैठ जाओ श्रमण ! राजभवन में आग लगाकर वटवृक्ष के नीचे जाने से नहीं बनेगा ! अब लपटें उठी हैं उनका स्वाद लो। तुम्हारे श्रमण गूढ़पुरुष बराबर हमारे पीछे पड़े रहे हैं। देवियों ने तीन का चीवर छीना, दो के मुख पर काजल पोत दिया। रात को हम गंगातट के रुद्र मन्दिर के मंच पर सोते रहे हैं। नगरवासी रातभर जागकर पहरा देते

रहे हैं। तुम्हारे चेले कब क्या न कर बैठें। इसका भय इस नगरी के जन-जन पर चढ़ा है। निर्भय केवल हम दो रहे हैं श्रमण !

धारिणी तुमने जिस संहार को निमंत्रण देकर बुलाया भन्ते ! उसकी लपटों में मध्यदेश, अन्तर्वेद सभी समा चुके हैं। अयोध्या के भवनों पर जो लपटें उठीं उन्हें हमारी आँखों ने देखा। मथुरा मध्यमिका की सूचना; मार्ग के नगर-ग्राम की सूचना हमारे कान में पड़ चुकी है। पाटलिपुत्र के पौरजन हमारे प्राण की चिन्ता में पड़े हैं। सुन लो श्रमण ! जिस देश में किसी की रक्षा न हो सके, दया, धर्म उठ जाय, अहिंसा के आवरण में हिंसा की नागिन लहराये""उस देश में केवल पिशाच रहेंगे"" केवल पिशाच""

धर्मरक्षित तुम दोनों यही असत्य बातें कहकर प्रजा को विद्रोही बनाते रहे हो !

बृहद्रथ बैठ जाओ कुमारी ! तुम्हारी देह काँप रही है।

धारिणी किस आसन पर…

बृहद्रथ ऐं…मंत्री""

सोमशील उत्तर दें भन्ते ! सेनापति और मंत्री दोनों आप ही हैं।

धारिणी (सोमशील की ओर देखकर) इस वेश में (विस्मय की मुद्रा) न""न""यह वेश न मंत्री का है न सेनापति का""सिर मुड़ाये ""गैरिक उत्तरीय और अधोवस्त्र यह वेश तो अमंगल कहा गया है। सबेरे देख लेने पर दिनभर भोजन नहीं मिलता"" मार्ग में देख लेने पर यात्रा निष्फल होती है, गिद्ध और यती का दर्शन संग्राम में पराजय देता है।

अग्निमित्र जिस राजा के सिंहासन के दायें मुण्डित शीश और कषाय-चीवर में श्रमण बैठा हो उसके राज्य में क्या होगा ?

धारिणी जो मथुरा में हुआ, मध्यमिका में हुआ, साकेत में हुआ··· उद्धत यवन के मार्ग में जितने ग्राम नगर पड़े सबमें हुआ····

बृहद्रथ (उद्वेग और क्रोध) इन दोनों को सभा भवन से बाहर करो दण्डपाल !

नेपथ्य में (शंखध्वनि, कोलाहल) कभी नहीं····कभी नहीं····छूना मत उन्हें दण्डपाल !

सोमशील हरे ! हरे ! (आगे बढ़कर द्वार पर तीन तरुणों को रोकते हुए) संस्थागार में बलपूर्वक प्रवेश करने का अधिकार····

नेपथ्य में हम जानते हैं हमें नहीं है ।

सोमशील तब पाटलिपुत्र के सभ्य ऐसा अनाचार क्यों कर रहे हैं ?

नेपथ्य में राजा जैसा करता है वैसा ही प्रजा भी करती है । ब्राह्मणकुमार अग्निमित्र और उनकी भावी पत्नी हमारी आँखों की पुतली हैं । सेनापति पुष्यमित्र जो न होते तो इस पाटलिपुत्र की भी वही गति होती जो मथुरा की हुई । यहाँ भी किशोर नारीवेश में नचाये गये होते । रुद्रमन्दिर गंगा के पेट में चला गया होता ! वेद-विद्या के आचार्य मारे गये होते । रामायण, महाभारत के ग्रन्थ यवन सेना का इंधन बने होते ।

धर्मरक्षित आख्यानक काव्य सब झूठ हैं । सत्य केवल शास्ता के वचन हैं । शेष सब झूठा है ।

धारिणी श्रीरामचन्द्र का सत्य झूठा है, श्रमण ? जिसकी रक्षा में वे चौदह वर्ष वन, पर्वत, नदी, नद और समुद्र भी लाँघ गये । चित्रकूट में भरत जैसे भाई उन्हें मनाकर हार गये और वे नहीं लौटे । लौटकर सिंहासन पर बैठ जाते । भोग विलास का जीवन बिताते तो उन्हें कौन रोक लेता ? पिता के सत्य का नाश होता उनका क्या बिगड़ता ?

अग्निमित्र पिता का सत्य पुत्र स्वयं होता है कुमारी ! दशरथ के सत्य की हानि श्रीराम के सत्य की हानि होती ! काल के शीश पर

तब उनके चरण न पड़ते। श्रीराम विग्रहवान् धर्म हैं, विग्रह-वान् अर्थ हैं। हमारे धर्म का संस्कार उनके धर्म से होता है, हमारे अर्थ का संस्कार उनके अर्थ से होता है। आदिकवि ने हमें, हमारी जाति को, भारतीय प्रजा को चारों पुरुषार्थ राम-कथा के माध्यम से दे दिया। हमारे सारे अभाव उससे मिट गये। आचार्य पतंजलि कहते हैं यह देश श्रीराम का है। जितने पुरुष हैं सबमें श्रीराम का अंश है और सभी नारियाँ जानकी के अंश से बनी हैं।

धर्मरक्षित शास्ता के यशरूपी सूर्य का राहु तुम्हारे कवि ने राम को बना दिया।

धारिणी श्रीराम कहो श्रमण! (पैर पटककर, तुम्हें कहना पड़ेगा। कहो श्रीराम!)

नेपथ्य में (अनेक जन) कहो''''कहो'''कहो!

धर्मरक्षित अच्छी बात''''श्रीराम''''

नेपथ्य में (अनेक जन) श्रीराम'''श्रीराम'''श्रीराम''''

धारिणी शास्ता में भी उन्हीं का अंश है श्रमण! आदिकवि के श्रीराम ने ही शास्ता के रूप में अवतार लिया। इसे मान लेने में क्यों संकोच कर रहे हो?

धर्मरक्षित मैं यह नहीं मानूँगा?

नेपथ्य में सेनापति पुष्यमित्र के प्रताप का सूर्य जब निकलेगा तब इस मुण्डी की आँखें सत्य देखेंगी!

बृहद्रथ कौन है यह पुष्यमित्र? किस सेना का सेनापति है?

सोमशील महाराज।

बृहद्रथ कहो ब्राह्मण!

सोमशील सिन्धु तट से लेकर शोणभद्र तक आपकी जितनी सेना है उस पूरी सेना के सेनापति पुष्यमित्र शुंग हैं।

बृहद्रथ दिवा स्वप्न में पड़े हो भद्र! किसने यह पद दिया उसे?

सोमशील आपने महाराज ! और आपके मंत्री संघस्थविर धर्मरक्षित ने····

बृहद्रथ
धर्मरक्षित } मिथ्या···मिथ्या····

सोमशील यज्ञ की सीमित जीवहिंसा शाक्य मुनि नहीं सह सके। जगत् के दुःख को जीत लेने के लिए वे भरे-यौवन में तरुणी पत्नी और शिशु पुत्र को छोड़कर अपने राजभवन से निकल पड़े थे।

धर्मरक्षित जगत् के दुःख को वे जीत भी गये।

अग्निमित्र उन्हीं के धर्म की ध्वजा लेकर तुम जगत् का दुःख बढ़ा रहे हो !

धर्मरक्षित प्रमाण क्या है शत्रुपुत्र !

धारिणी (घृणा की हँसी) महाराज ! (धर्मरक्षित के सामने पहुँचकर) किसे शत्रुपुत्र कह रहा है यह मुण्डी ! (आवेश में हाथ आगे हिलाती है।)

बृहद्रथ हैं···हैं····तुम्हारा हाथ तो भन्ते के सिर तक पहुँच गया।

धारिणी इसके छूने से मुझे पाप लगेगा। इससे छू जाने में पाप है महाराज ! इसके छूने में पाप है। मकर संक्रान्ति को भी यह स्नान नहीं करता। भयानक गंध इसकी देह से निकल रही है। जिस मंच पर कभी भगवान् चाणक्य बैठे होंगे···त्रिपुण्डधारी भगवान विष्णुगुप्त····प्रातःमध्याह्न और सायं स्नान करने वाले···जिनके मंत्रबल से चक्रवर्ती सम्राट् चन्द्रगुप्त ने यवन मूर्धा पर चरण रखकर निषध पर्वत से इस देश की सीमारेखा बनाया····हाय ! उसी मंच पर यह मुण्डी बैठा है। इसके मंत्र के बल को लोग देखें····आततायी यवन अयोध्या को भस्म कर काशी पर चोट कर रहा है। कहाँ निषध पर्वत और कहाँ काशी···मातृभूमि की आधी देह यवनों के अधिकार में है।

नेपथ्य में धिक्कार है·······धिक्कार है (अनेक कण्ठ की ध्वनि गूँज उठती है।)

धारिणी सुनें'''सुनें'''आचार्य मारे गये'''ब्रह्मचारी मारे गये'''जिनकी अभी रेख भी नहीं भीनी थी''''रामायण, महाभारत के ग्रन्थ खोज खोजकर फूँके गये'''नगर ग्राम अग्नि की लपटों में लुप्त हैं''''मन्दिरों के चिह्न भी मिट गये''''इसी फल के लिए भगवान् चाणक्य ने मौर्य राज्यचक्र का प्रवर्तन किया था ? महाराज ! बोलें ! महाराज ! यह प्रश्न आप से है।

धर्मरक्षित तुम्हारे प्रश्न का उत्तर महाराज नहीं देंगे।

धारिणी क्यों नहीं देंगे श्रमण ? क्या मैं महाराज की प्रजा नहीं हूँ ? हर प्रजा का उत्तर महाराज को देना होगा। राजा प्रजा के लिए होता है प्रजा राजा के लिए नहीं होती।

नेपथ्य में (अनेक कण्ठ ध्वनि) साधु ! साधु ! राजा प्रजा के लिए होता है। कुमारी के प्रश्न का उत्तर दें महाराज !

बृहद्रथ क्या सुन रहा हूँ भन्ते ! यवन सेना ने ऐसा संहार किया''''

धर्मरक्षित यवन नरेश सद्धर्म की दीक्षा ले चुके हैं। उनके विरोध में ब्राह्मण आचार्य यह प्रचार कर रहे हैं। शिव और विष्णु के सम्प्रदाय में वे गये होते तो उनका स्वागत यही आचार्य करते।

अग्निमित्र विदेशी का, विधर्मी का स्वागत आचार्यजन नहीं करते श्रमण ! यह कार्य तुम्हारा है। विदेशी भिक्षा से तुम धन्य होते हो ! आततायी को तुम देशी ब्राह्मण से श्रेष्ठ मानते हो। महाराज की नामांकित मुद्रा का तुमने दुरुपयोग किया है। तुमने राजा के साथ भी छल किया है श्रमण ! केवल प्रजा के साथ नहीं। राजा के सेनापति यवन सेना से कहीं नहीं लड़े।

बृहद्रथ कहीं नहीं लड़े ? क्या कह रहे हो ब्राह्मणकुमार !

अग्निमित्र आपका मुद्रांकित आदेश उन्हें मिलता गया''''उस आदेश के अनुसार उन्होंने यवन सेना का स्वागत किया। नागरिकों को लूटकर'''अन्न, वस्त्र, धन, शस्त्र सब कुछ यवनों को दे दिया। घरों के भीतर से आपकी सेना ने देवियों को खींच लिया और

यवनों को सौंप दिया। क्या आप अपने उन आदेश पत्रों को भूल गये ?

बृहद्रथ मैं कुछ नहीं जानता....

अग्निमित्र फिर आप राजसिंहासन पर क्यों हैं ? आपके आदेश से प्रजा का वध हो रहा है, नगर ग्राम भस्म हो रहे हैं, आचार्य और ब्रह्मचारी मारे जा रहे हैं, देवियों का धर्म लूटा जा रहा है और आप जानते नहीं। कौन मानेगा कि आप सत्य कह रहे हैं।

धर्मरक्षित (व्यंग्य के स्वर में) राजनीति में सत्य की परिभाषा दूसरी होती है शत्रुपुत्र ..!

धारिणी (क्रोध में काँपती हुई) इस मुण्डी ने फिर शत्रुपुत्र कहा !

धर्मरक्षित हाँ सुन्दरी ! लाख बार, करोड़ बार कहूँगा यह शत्रुपुत्र है।

अग्निमित्र (संकेत से धारिणी को रोककर) बौद्धसंघ के प्रधान स्थविर इन कुमारी को सुन्दरी कह रहे हैं इस नगरी के तरुण सुन लें।

नेपथ्य में काट लो वन्धु ! इस बूढ़े बकरे की जीभ काट लो। नारी रूप की आसक्ति इसके मन में न होती तो यह सुन्दरी शब्द से सम्बोधन कुमारी को न करता।

धारिणी हमारे जिन आचार्यों की यह निन्दा करता है ...आचार्य मेधातिथि, आचार्य पतंजलि....इनमें कोई भी मुझे, मेरी अवस्था की किसी कन्या को सुन्दरी नहीं कहता !

धर्मरक्षित कह दो क्या कहता है ?

धारिणी पुत्री कहता, प्रिय-दर्शिनी कहता....आयुष्मती और स्वस्तिमती कहता....समय का फेर है मुण्डी ! अश्वमेध आचार्य की पुत्री को जो अभी कुमारी है तुम सुन्दरी कह रहे हो। मेरी ओर आँख उठाकर देखने में तुम्हारी आत्मा क्यों नहीं काँपी ?

अग्निमित्र आत्मा यह नहीं मानता....देह को जल से दूर रखता है...आत्मा से दूर रखता है...कहो मुण्डी, मैं तुम्हारे किस शत्रु का पुत्र हूँ।

धर्मरक्षित तुम राजद्रोहियों के नेता हो। महाराज के विरोध में तुम इतने

तरुणों को साथ ले आये हो जो इस सभा-भवन के सब ओर शस्त्र खनखना रहे हैं। शंख बजा रहे हैं। उनके हृदय की हिंसा इस रूप में व्यक्त हो रही है। तथागत के धर्म में हिंसा नहीं करुणा है।

धारिणी मथुरा से अयोध्या तक सब कहीं उसी करुणा की लहर उठ रही है मुण्डी! जिसमें ग्राम, नगर सब लुप्त हो रहे हैं। (नेपथ्य में क्रोध और घृणा की हँसी)

सोमशील ब्राह्मणकुमार!

अग्निमित्र शंका न करें आर्य मैं आपका मित्र हूँ। पाटलिपुत्र के जन-जन का मित्र हूँ। मौर्य महाराज का मित्र हूँ और मित्र तो मैं इस मुण्डी का भी हूँ।

धर्मरक्षित (हताश हँसी) हा···हा····तुम मेरे मित्र हो शत्रुपुत्र, तुम जिसका पिता बुद्ध का शत्रु है, संघ का शत्रु है और धर्म का शत्रु है।

बृहद्रथ अपने उस शत्रु का नाम लें भन्ते! जो बुद्ध का, संघ का, धर्म का शत्रु है। इन कुमार को आप तीन बार शत्रुपुत्र कह चुके पर उस शत्रु का नाम कहें मैं भी जान लूँ।

धर्मरक्षित पुष्यमित्र महाराज! मालवभूमि के विदिशा ग्राम का दरिद्र ब्राह्मण···दक्षिण का सातवाहन कुल का ब्राह्मण था जो शस्त्रबल से राज्य पर अधिकार कर बैठा। यह पुष्यमित्र आयुधजीवी है जो आपके सिंहासन का स्वप्न देख रहा है बौना चन्द्रमा छूने चला है महाराज! उसके दरिद्र हाथ में आपका यह राजदण्ड जायेगा महाराज! (बृहद्रथ के दायें हाथ में रत्नजटित स्वर्णदण्ड की ओर संकेत करता है।)

बृहद्रथ देवप्रिय अशोक ने अपने वंशधरों के लिए युद्ध वर्जित कर दिया था भन्ते!

धर्मरक्षित हाँ महाराज ! युद्ध की हिंसा से उन्होंने अपने वंशधरों को बचा लिया।

बृहद्रथ (हाथ का राजदंड हिलाकर) इस राजदण्ड में, इस राजसिंहासन में (ऊपर देखकर) इस सिंहासन-वितान में, इन प्रतिहारियों के हाथ के चँवर में···इन सबमें भी तो हिंसा है भन्ते ! राजभोग में सब कहीं हिंसा है, उन देवप्रिय ने यह सब क्यों नहीं वर्जित किया। केवल शस्त्र और समर से अपने वंशधरों को वे क्यों विरत कर गये। इस अधूरी अहिंसा से किसी का कल्याण नहीं हुआ भन्ते ! किसी का नहीं।

धर्मरक्षित महाराज ! आपके पूर्वज अशोक अपने वंशधरों को सिंहासन और राजभोग से भी वर्जित कर जाते ? सद्धर्म और संघ की रक्षा से भी वर्जित कर जाते ?

बृहद्रथ (झटके से उठकर) तब उनकी अहिंसा पूरी होती भन्ते ! शास्ता ने अपने अकेले पुत्र राहुल को जैसे चीवर और भिक्षापात्र दिया था वैसे ही वे भी अपने पुत्र, पौत्रों को चीवर और भिक्षापात्र दिये होते। राजा का काम प्रजा की रक्षा करना है। सद्धर्म और संघ अपनी रक्षा करते। अपने वंशधरों को शस्त्र और समर से विरत कर उन देवप्रिय ने प्रजा की रक्षा से विरत किया था। यही अनर्थ हुआ।

धर्मरक्षित आप उन देवप्रिय की निन्दा कर रहे हैं महाराज !

बृहद्रथ जिन काव्यों को आप आख्यानक पाखण्ड कहते हैं भन्ते ! मैं उनकी कथा सुन चुका हूँ। सुनते सुनते कभी रो पड़ा हूँ··· कभी हँस पड़ा हूँ···कभी क्रोध में कभी भय में काँप भी उठा हूँ। आदिकवि का काव्य मर्म की कथा है भन्ते ! रामजन्म के प्रसंग से सन्तानहीन होने का दुःख मैं भूल गया हूँ। राक्षसों से मुनि के यज्ञ की रक्षा बालक रामचन्द्र करते हैं अनर्गल वर्णन है ? जनक की वाटिका में राम जानकी का प्रथम दर्शन, दोनों

का विसर्जित अनुराग, धनुष-भंग, स्वयंवर प्रसंग, विवाह-वर्णन, परशुराम का क्षोभ फिर वन गमन, चित्रकूट में भरत मिलन, परलोकवासी पिता का तर्पण, जनस्थान के मार्ग में ऋषियों के आश्रम, रावण की बहन का छल, खरदूषण-विजय, कंचन-मृग के लोभ में पड़ी जानकी, जानकी का लक्ष्मण पर सन्देह, सीताहरण, सीता की रक्षा में जटायु की परमगति, राम विलाप····

धर्मरक्षित नारी की आसक्ति में महाराज···

बृहद्रथ नारी की आसक्ति नहीं भन्ते! अपने धर्म की आसक्ति, अयोध्या का राजभवन जिस भगवती ने हठकर पति की सेवा के लिए छोड़ा था। वन-पर्वत के दुःख को परम सुख माना था। जनक की पुत्री जानकी का हरण, रावण के अशोकवन में निवास, राम के पौरुष के प्रसंग, मेघनाद वध, रावण वध, ऐसे कितने प्रसंग आदिकवि दे गये। ऐसे प्रसंग भन्ते जो हृदय हिलाते हैं, काया को रोमांचित करते हैं उन प्रसंगों के रस में यह जगत् रसमय हो जाता है भन्ते! भूमि के सभी भोग उन प्रसंगों में सार्थक हैं। (अग्निमित्र की ओर ध्यान से देख-कर) वनवास के समय उनकी यही अवस्था रही होगी···· ऐसे ही किशोर, उनके कन्धे में भी ऐसा ही धनुष रहा होगा।

धारिणी (दोनों कानों पर हाथ रखकर) हरे! हरे! ऐसा अनाचार···· नर की नारायण से तुलना···भक्त की भगवान् से····

बृहद्रथ (सिंहासन से उत्साह में उठकर) और भगवती जानकी भी वैसी ही रही होंगी····जैसी तुम हो कुमारी!

अग्निमित्र (हँसकर) मौर्य सम्राट् को परिहास सूझ रहा है? भगवती जानकी तब कुमारी नहीं थीं! पुरुषोत्तम की पत्नी वे विवाह-मण्डप में अग्नि की परिक्रमा कर बन चुकी थीं।

बृहद्रथ आदिकवि ने उन दोनों के रूप का जो चित्र शब्दों में उतार

दिया है वह तो तुम दोनों से मिलता है''''भगवती मन और संस्कार दोनों से उनकी पत्नी बन चुकी थीं यह भगवती अभी केवल मन से पत्नी बनी हैं और संस्कार का लाभ भी तो इन्हें आज ही इसी भूमि में मिलने वाला है। उस पुण्य अवसर तुम दोनों चाहो तो मुझे दे दो !

अग्निमित्र (सहमकर) सम्राट् आप मुझे विस्मय में डाल रहे हैं। किस पुण्य का अवसर आप लेंगे ?

बृहद्रथ (दृढ़ संकल्प से) जब तक तुम्हारे आचार्य पतंजलि आयें''''तुम्हारे पिता पुष्यमित्र आयें जो अपने बल से मौर्य सेनापति बन गये''''(धारिणी की ओर देखकर) इन कुमारी का पिता बनकर, मैं इनका दान तुम्हें कर दूँ। पाटलिपुत्र के ब्राह्मण वेद विधि से तुम दोनों का विवाह करा दें। ब्राह्मण आचार्य कौटिल्य ने शूद्र नन्दों को उतार कर जिस चन्द्रगुप्त को इस सिंहासन पर बैठाया था उसके वंश का अन्त (अपनी छाती पर हाथ रखकर) इस देह के साथ आज ही हो रहा है। मुझे कोई पुत्र-पुत्री नहीं है। मैं सन्तानहीन हूँ।

धारिणी (उद्वेग में) हाँ तब महाराज !

बृहद्रथ तुम्हें पुत्री बनाकर तुम्हारा दान इन आयुष्मान् को करने की कामना क्यों मेरे मन में उठी मैं नहीं जानता पर''''

धर्मरक्षित इस नागिन का विष आप पर चढ़ रहा है महाराज'''तभी''''अपनी कालरात्रि को आप पुत्री बना रहे हैं। उस किशोर ने नहीं'''इस किशोरी ने आपकी प्रजा को विद्रोही बनाया है। इसी सभाभवन में आपका वध भी'''

बृहद्रथ यही करेगी भन्ते ! जैसे भवानी ने महिष असुर का वध किया था। अब आप मेरे प्राण की चिन्ता न करें। मैं केवल वध चाहता हूँ, भन्ते ! निर्वाण की इच्छा मुझे नहीं है। यवन अनाचार की कथा जो यह इस नगरी में कहती रही है, प्रजा

के जन धन का संहार; आचार्यों और ब्रह्मचारियों का वध ग्रन्थों, ग्रन्थागारों, मन्दिरों से उठी लपटें मेरी आँखों में लहरा रही हैं भन्ते ! ऐसे भयानक संहार का कारण कौन है भन्ते ?

नेपथ्य में (अनेक ध्वनि) यही मुण्डी···यही मुण्डी···यही मुण्डी···

बृहद्रथ सुनें···सुनें···कोई नहीं···केवल मैं···यवनों के सारे पाप, सारे कुकर्म मेरे कारण हुए हैं। इस नरमेध का आचार्य मैं हूँ···होता मैं हूँ···यजमान भी मैं हूँ। मैं प्रतिज्ञा दुर्बल हूँ···अरक्षक राजा हूँ···मेरे इस कार्य का दण्ड केवल मेरा वध है।

नेपथ्य में (कई स्वर) यवन पिशाचों को आपने इस कर्म के लिए प्रेरित किया, निमंत्रण दिया···

नेपथ्य में (दूसरे जन) आप स्वीकार करते हैं ?

बृहद्रथ मैं स्वीकार करता हूँ। मेरी सेना कहीं नहीं लड़ी···प्रजा वध, आचार्य-ब्रह्मचारी वध, मेरे सैनिक देखते रहे, सेनापति देखते रहे। मेरे राजमुद्रांकित पत्र से उन्हें यही आदेश मिला। 'रक्षक ही भक्षक' हो गये···इसी फल के लिए पूर्वज महाराज अशोक ने अपने वंश में शस्त्र और समर से सबको विरत कर दिया···मंत्रिपरिषद् का अधिकार संघाराम के श्रमणों को दे दिया। मुझे स्मरण नहीं है भन्ते ! आप कहें मेरी राजमुद्रा आपको कैसे मिली ?

धर्मरक्षित प्रियदर्शी के समय से ही वह मुद्रा संघाराम में है। मेरे पूर्व के संघस्थविर भी उसका उपयोग करते आये।

सोमशील मंत्रिपरिषद् में इस कर्म का विरोध भी सदा होता आया महाराज ! पूर्व के महामात्य बराबर कहते आये कि वह मुद्रा संघस्थविर से लेकर महाराज या महामात्य के पास रखी जाय। महाराज अशोकवर्धन की सातवीं पीढ़ी में आपने जन्म लिया। बीच के जो पाँच महाराज इस सिंहासन पर बैठते

आये, सबके अभिषेक के समय यह प्रश्न मंत्रिपरिषद् उठाती रही।

धर्मरक्षित प्रियदर्शी की व्यवस्था मिटाने की शक्ति किसमें थी ब्राह्मण सोमशील !

सोमशील उस व्यवस्था को कालपुरुष मिटा रहा है भन्ते ! प्रियदर्शी महाराज की व्यवस्था सात पीढ़ी के मंत्री नहीं मिटा सके उसे काल स्वयं मिटा रहा है। निषध पर्वत से शोण-संगम तक जितना भयानक संहार हुआ है प्रियदर्शी की उसी व्यवस्था से हुआ है। (गहरी साँस)

अग्निमित्र उसके निमित्त आप रहे हैं भन्ते ! महाराज नहीं।

बृहद्रथ प्रियदर्शी की यह व्यवस्था न मिटाकर इस पाप का कारण मैं बना हूँ प्रियदर्शन ! भन्ते को दोष न दो···मुझे दो····भन्ते के चेले आज भी भन्ते के साथ हैं और आगे भी रहेंगे···मेरे साथ कौन है ? (गहरी साँस खींचने लगता है।)

सोमशील महाराज !

बृहद्रथ सैनिक मेरे नहीं हैं, सेनापति मेरे नहीं हैं···कोई दण्डधर-दण्डपाल मेरे साथ नहीं है···प्रजा का एक जन मेरे साथ नहीं है···· फिर भी मैं इस सिंहासन पर हूँ। अपने अधिकार से नहीं दूसरे की कृपा से····भन्ते !

धर्मरक्षित सद्धर्म आपके साथ है महाराज ! हम सब आपके साथ हैं···· सभी संघ, संघाराम, तथागत के सभी श्रमण···

बृहद्रथ (दुःख की हँसी) पर यह संस्थागार, यह सिंहासन किसका है ? बोलें भन्ते ! यह सब किसका है ?

धारिणी यह सब प्रजा का है महाराज ! भन्ते अपने मुँह इस सत्य को स्वीकार नहीं करेंगे !

बृहद्रथ ठीक कह रही हो पुत्री !

धारिणी पुत्री मुझे न कहें महाराज ! मैं आपकी कालरात्रि हूँ।

बृहद्रथ मेरा अंश कहीं उपजा होता·· पुत्र या पुत्री रूप में तो तुम्हारी आयु का होता, इन प्रियदर्शन की आयु का होता····भन्ते ! राजमुद्रा का उपयोग पहले भी कभी किसी विदेशी बर्बर की सेना के स्वागत में हुआ है ?

धर्मरक्षित सद्धर्म के हित में सदैव हुआ है ? प्रियदर्शी जगत् में इस धर्म की ध्वजा देखना चाहते थे। अपनी पुत्री और पुत्र को भी इसी कार्य के लिए उन्होंने सिंहल भेजा। इसी राजमुद्रा से अंकित प्रमाण-पत्र लेकर श्रमण और स्थविर महाचीन, सुमेरु, त्रिविष्टप, ब्रह्मदेश, कम्बोज, यवद्वीप, स्वर्णद्वीप, कितना गिनाऊँ महाराज ! कहाँ नहीं गये ?

सोमशील उस प्रमाण पत्र से प्रमाणित क्या होता था भन्ते ? यही न कि वे विधिवत् दीक्षित श्रमण हैं। उनका शील सदाचार उत्तम है। न वे साहसिक दस्यु हैं न वञ्चक। उनसे किसी भी राजा और उसकी प्रजा को भय नहीं है। गंगा की लहरों को रक्त से रँगने के लिए विदेशी दानव को कभी इस मुद्रा के उपयोग से बुलाया गया ? मौर्य साम्राज्य की सेना को प्रजा की रक्षा से मना किया गया ? आपके कर्म से महाराज कलंकित हुए। प्रजा के संहार का पाप, आचार्यों और वटुओं के वध का पाप, ग्रन्थों और मन्दिरों के संहार का पाप महाराज के सिर चढ़ा। इतिहास आपको, आपके संघ को, आपके सद्धर्म को भी भूल जायेगा पर क्या कभी महाराज बृहद्रथ को भी भूलेगा ?

नेपथ्य में (अनेक जन) कभी नहीं····कभी नहीं भूलेगा मंत्री !

सोमशील हाय ! हाय ! भद्रजन मुझे मन्त्री न कहें। यह पाप मेरे सिर पर भी है। मैंने अपने अधिकार पर हठ क्यों नहीं किया ? कायर क्यों बन गया। हम आठ मन्त्री कठपुतली क्यों बन गये ? किसी भी बालक और आचार्य के वध के पहले हम आठ का वध क्यों नहीं हुआ ? भगवान् चाणक्य की राजनीति का

भार हमने क्यों उठाया जब हमारे कन्धे इतने निर्बल थे ? (गहरी साँस लेने लगता है।)

अन्य मंत्री (एक स्वर में) हमें धिक्कार है। हमें अब प्रायश्चित्त करना है।

सोमशील तब चलो, हम सब एक साथ अग्नि में प्रवेश करें····

अन्य मंत्री चलें महामात्य, हम सब एक साथ····

सोमशील [सोमशील वेग में पूर्व के द्वार की ओर बढ़ता है।] हम सब एक साथ अग्नि में प्रवेश करेंगे। यह संकल्प अब सबका है ?

अन्य मंत्री सबका है···सबका है···· (सभी मंत्री खड़े हो जाते हैं।)

धारिणी (सोमशील के मार्ग में खड़ी होकर दोनों बाहें फैलाकर मार्ग रोकती हुई) आठ मंत्री आत्मघात कर प्रेतयोनि में जायेंगे।

सोमशील प्रायश्चित्त में अग्नि-प्रवेश का विधान है प्रियदर्शिनी ! हट जाओ····हट जाओ····

धारिणी मुझे धरती पर गिराकर···मुझे रौंदकर आप आगे बढ़ेंगे। आचार्य मेधातिथि से इसकी व्यवस्था लें, आचार्य पतंजलि से या इस महानगरी के आचार्य व्योमकेश से इसकी व्यवस्था लें। इनमें कोई आचार्य आपके प्रायश्चित्त का जो विधान दे उसे स्वीकार करें।

नेपथ्य में (अनेक स्वर) साधु ! साधु ! कुमारी जो कह रही हैं वही हो···

सोमशील महानगरी के भद्रजन यही व्यवस्था दे रहे हैं ?

नेपथ्य में (एक) हाँ महामात्य ! अग्नि-प्रवेश का अधिकार आपको किसने दिया ? किस आचार्य ने प्रजा के भी किस जन ने ? अपने किसी भी कर्म में आप स्वतन्त्र कहाँ हैं ? आपके ऊपर शास्त्र के अधिकारी हैं और उनके ऊपर धर्मशास्त्र स्वयं है ?

सोमशील आप संस्थागार में आ जायें आचार्य ! महानगरी के आचार्य व्योमकेश यहाँ पहले से उपस्थित रहें और तब वे दोनों आचार्य

यहाँ पधारें। वह भी देख लें इस नगरी में भी कोई आचार्य है। गंगा, यमुना और सरस्वती के तीन प्रवाह का संगम प्रयाग में है""इस संस्थागार में तीन आचार्यों का संगम हो।

नेपथ्य में (कई जन) उत्तम है""उत्तम है""आचार्य ! आप संस्थागार में चलें...

नेपथ्य में (व्योमकेश) महामात्य ! किस अधिकार से मैं संस्थागार में प्रवेश करूँ ?

सोमशील विद्या और शास्त्र के अधिकार से तात ! आपके चरणों के संसर्ग से यह संस्थागार आज धन्य होगा।

व्योमकेश (प्रवेशकर) जैसे कभी भगवान् विष्णुगुप्त के चरणों के संसर्ग से यह धन्य होता था...तुम यह भी कह दोगे ? (व्योमकेश तेजस्वी वृद्ध पुरुष हैं। अधोवस्त्र के ऊपर कौषेय उत्तरीय, उन्नत ललाट पर श्वेत भस्म का त्रिपुण्ड, कण्ठ में रुद्राक्ष की माला, सिर के बाल श्वेत, अत्यन्त प्रभावशाली आँखें)

सोमशील हाँ तात ! मेरी बात को आपने लोक लिया। मैं यही कहने वाला था। मेरे मन की बात भाँपकर आपने""

बृहद्रथ इस संस्थागार में कितने वर्ष बाद आप आये हैं आचार्य ? (उत्सुक होकर उनकी ओर देखता है।)

व्योमकेश (दृढ़ हंसी) यहाँ मेरे आने का प्रयोजन कभी नहीं आया राजन् ! लोकयात्रा के अस्सी वर्ष बीत रहे हैं""ऐसा अवसर कभी आया नहीं।

बृहद्रथ ऐं""पाटलिपुत्र के प्रसिद्ध आचार्य इसमें पहली बार आ रहे हैं ! यहाँ आने का कभी अवसर नहीं आया ?

व्योमकेश जिस पुरानी पद्धति का आचार्य मैं कहा जाता हूँ महाराज ! उसकी प्रतिष्ठा इसमें कभी नहीं हुई। मनु के धर्मशास्त्र और चाणक्य के अर्थशास्त्र का व्यवहार अशोकवर्धन महाराज के समय में हो आपके इस सभाभवन में रुक गया""तब से रुका

ही रह गया। व्यवहार-निर्णय यहाँ शास्त्र मत से न होकर संघ और संघस्थविर के मत से होता आया। भला ऐसे स्थान पर मेरे जैसे लोग क्यों आते? वसिष्ठ और मनु के आदेश जहाँ निर्बल हो गये वहाँ मेरा बल क्या कर लेता? महाभारत में व्यासदेव ने राजधर्म का जो निरूपण किया, इस विषय में भगवान् मनु ने जो कहा, वसिष्ठ और दूसरे ऋषि जो कह गये सबका सार तत्त्व लेकर आचार्य चाणक्य ने अर्थशास्त्र सरीखे लोक और परलोक का सेतु बनाया था। आपके संस्थागार में वही सेतु तोड़ा गया। अब आपकी प्रजा का न लोक बँचा और न परलोक…केवल प्रजा ही नहीं राजन्! प्रजा के पूर्वज भी लोक और परलोक दोनों हार गये।

धर्मरक्षित तथागत के धर्म में परलोक नहीं है ब्राह्मण! और परलोक के पूर्वज भी नहीं हैं…

व्योमकेश (हँसकर) तब तो यह लोक भी नहीं भन्ते! यवन सेना ने जो हमारे इस लोक का संहार किया है वह भी नहीं है। किशोरियों का अपहरण, किशोरों का वध आपके सद्धर्म में यह सब भी नहीं है। निषध पर्वत से शोण संगम तक की मातृ-भूमि की पराधीनता भी आपके लिए कुछ नहीं है। तथागत भी इस संहार को न सह पाते भन्ते! आप जिसे सुख से सह रहे हैं।

धर्मरक्षित यह न भूलो ब्राह्मण कि प्रियदर्शी अपने वंशजों को युद्धकर्म से विमुख कर गये थे। तुम्हारे शास्त्र हिंसक हैं उनको मानने-वाले तुम्हारे पूर्व नरेश भी हिंसक रहे।

अग्निमित्र तुम्हारी जीभ गिरेगी मुण्डी! (क्रोध में काँपता है।)

व्योमकेश (हाथ ऊपर उठाकर) शान्त रहो प्रियदर्शन! सब सुनो, सब सहो…क्रोध न करो…शास्त्र का आदेश तुम्हारे लिए यही है। हाँ भन्ते! प्रियदर्शन अपने वंशजों को युद्ध से विरत कर गये;

कह गये कि विदेशी दस्यु प्रजा का वध करें पर उनके वंश के राजा केवल राज्य और सिंहासन का भोग करें, प्रजा की रक्षा न करें ? कह दो हाँ""फिर तो देश की प्रजा के साथ देश को भी निर्वाण मिल जाय !

[नेपथ्य में सब ओर घृणा की हँसी गूँजती है ।]

बृहद्रथ सुनें भन्ते ! घृणा की यह हँसी सुनें ! आकाश से नीचे यह हँसी उतर रही है""धरती के ऊपर यह हँसी उठ रही है ! आपका निर्वाण तो आपकी मुट्ठी में है पर मेरा निर्वाण···

धर्मरक्षित तथागत आपको देंगे ।

बृहद्रथ क्षत्रिय किसी से दान नहीं लेता। तथागत ने निर्वाण को अपने से लिया किसी से दानरूप में नहीं···पर इस प्रसंग में वनवासी दशरथपुत्र श्रीरामचन्द्र का व्यवहार उत्तम है। वन में निषाद-राज से मिले आहार को भी उन्होंने नहीं स्वीकार किया ···क्षत्रिय पौरुष से जीवन चलाता है किसी के दान से नहीं। महानगरी के प्रतापी आचार्य व्योमकेश इस भवन में पहली बार आये हैं, इनके आगमन का फल विस्मयजनक तो हो""

व्योमकेश (विस्मय में) महाराज !

बृहद्रथ (सिर से पहले राजमुकुट, फिर आभूषण, वस्त्र उतार कर सिंहासन पर रखते हुए) प्रियदर्शी का यह वंशज राजभोग छोड़कर युद्ध करेगा आचार्य ! अभिषेक की प्रतिज्ञा का निर्वाह अब से करेगा। अरक्षक राजा का दण्ड वध है। प्रजा ने वेण का वध किया था आचार्य !

[सिंहासन से उतर जाता है।]

व्योमकेश व्यासदेव के जय आख्यान में यह कथा आयी है।

बृहद्रथ मैं उस कथा को सुन चुका हूँ।

धमरक्षित आक्खानक काव्य झूठा है। सद्धर्म का लोप न करें महाराज !

बृहद्रथ सद्धर्म निर्वाण भले दे भन्ते ! पर प्रजापालन नहीं कर सकेगा।

सुनें भन्ते ! वेण की कथा झूठी हो सकती है, व्यासदेव की कल्पनामात्र हो सकती है पर उसका उद्देश्य झूठा नहीं है। प्रजा की रक्षा में जो राजा असमर्थ है उसका वध होना ही चाहिए। राज्याभिषेक के समय प्रतिज्ञा मुझसे भी वही करायी गयी थी जो ऋषियों ने वेण के वध बाद उसके पुत्र पृथु से करायी थी। उस प्रतिज्ञा का पालन मैंने नहीं किया। इधर मैं राजभोग उठाता रहा उधर प्रजा का संहार होता रहा। मैं अब अरक्षक हूँ भन्ते ! असत्यसन्ध हूँ। मेरा दण्ड भी वही है जो वेण को मिला था।

धर्मरक्षित तथागत ! तथागत ! अब यह सद्धर्म का लोप है।

[पश्चिम द्वार की ओर कोलाहल होता है।]

नेपथ्य में (एक स्वर) सभाभवन में अब मुण्डी का प्रवेश नहीं होगा···· नहीं होगा····नहीं होगा।

नेपथ्य में (दूसरा स्वर) भाग जाओ मुण्डी ! तुम्हारे वध का पाप मुझसे न हो, भाग जाओ····सभाभवन में तुम्हारा प्रवेश निषिद्ध है।

नेपथ्य में (तीसरा स्वर) राजमुद्रांकित इस पत्र को देखो तब पागल बनो। केवल मुण्डी नहीं हूँ मैं राजदूत भी हूँ। महाराज को गुप्तभेद देने हैं।

नेपथ्य में (चौथा स्वर) अहो ! मुण्डी राजदूत है। गुप्तचर है, इसके पास मुद्रांकित प्रमाणपत्र है। मुद्रांकित पत्र का भय अब किसे है मुण्डी ? अरक्षकी राजमुद्रा की मर्यादा क्या है ? अरक्षक राजा से रक्षक चाण्डाल उत्तम है।

बृहद्रथ (व्योमकेश की ओर आग्रह से देखकर) आचार्य ! दूत का संदेश न रोका जाय····

व्योमकेश (अग्निमित्र से) श्रमण दूत को महाराज के निकट ले आओ वत्स !

अग्निमित्र जो आदेश आचार्य ! (वेग से पश्चिम द्वार पर पहुँचकर) महानगरी की तरुण मण्डली से मेरा निवेदन है।

नेपथ्य में (कई जन) हाँ···हाँ····कहो बन्धु····

अग्निमित्र श्रमण दूत को आपलोग संस्थागार में आने दें।

नेपथ्य में तुम ऐसा कह रहे हो भद्र ?

अग्निमित्र आचार्य व्योमकेश का यही आदेश है मित्रो !

नेपथ्य में तब हम बाधा नहीं देंगे।

[अग्निमित्र के साथ तरुण श्रमण का प्रवेश। श्रमण अत्यन्त गौरवर्ण है। उसकी साँस में आँधी का वेग है।]

श्रमण (प्रवेशकर) अनर्थ हो गया भन्ते ! महासेनापति ने पूरी सेना के साथ शत्रु का पक्ष ग्रहण कर लिया। शोण और गंगा के संगम पर अपना शिरस्त्राण उन्होंने उस विद्रोही ब्राह्मण के सिर पर रख दिया····अपने कन्धे से धनुष उतारकर उसके कन्धे में···नीचे की धरती और ऊपर का आकाश···सब डोल रहे हैं····सब काँप रहे हैं····सब चक्कर दे रहे हैं भन्ते ! उस समय जो कुछ देखा···जितना सुना···कैसे कहूँ भन्ते ! कैसे कहूँ ? वक्षु के तट पर जन्म हुआ····यहाँ गंगा के तट पर सद्धर्म का दूत बना पर अब····एक युग से आपका विश्वासपात्र दूत रहा पर अब तो सब निष्फल है। आपके प्राण पर संकट है भन्ते ! इस सभाभवन से भागिए।

व्योमकेश हमारी धरती पर तुम निर्वाण लेने आये विदेशी या हमारी··· तुम झूठ कह रहे हो। भन्ते धर्मरक्षित के प्राण पर संकट कहाँ से आयेगा ?

श्रमण विदिशा का यह ब्राह्मण जिसके सिर पर अब मगध के महासेनापति का शिरस्त्राण है सब ओर हाथ उठाकर घोषणा कर रहा है कि वह हर एक श्रमण सिर के लिए सौ स्वर्ण निष्क पुरस्कार में देगा।

अग्निमित्र ऐसा झूठा प्रचार तुम अभी से करने लगे श्रमण! सुनो! सुनो! धर्मरक्षित से लेकर तुम तक जितने श्रमण हैं हमारे लिए सभी मृतक हैं, हम इन्हें प्राणवान् नहीं मानते।

धारिणी मुर्दे के सिर का मूल्य क्या होगा श्रमण? दत्तमित्र की सेना पराजित है। उसका सेनापति बन्दी है। (धर्मरक्षित की ओर संकेत कर) इन भन्ते का दायाँ हाथ नागसेन अपना ज्ञान···· दर्शन सब भूल चुका है। बर्बर विदेशी को सद्धर्म की दीक्षा देने के बहाने अपनी मातृभूमि का द्वार खोल देने वाला··· उसका भाई धर्मसेन भी बन्दी है। तुम यह कहो कि धर्मसेन का सिर अभी उस ब्राह्मण ने काटा या नहीं? यदि धर्मसेन का सिर कट चुका हो तब तुम्हारी बात सच हो सकती है।

व्योमकेश प्रियदर्शिनी के प्रश्न का उत्तर दो श्रमण···धर्मसेन का सिर उस ब्राह्मण ने कब और कहाँ काटा? समय और स्थान दोनों बताओ जहाँ उसका सिर कटा हो।

धारिणी देखें तात, यह बोल नहीं रहा है। नीचे धरती में इसकी आँखें गड़ गयी हैं। हरे! हरे! बोलो····बोलो विदेशी दूत····

बृहद्रथ बोलो दूत! अब चुप न रहो, बोलो!

[दूत थर-थर काँपता हुआ धरती देख रहा है।]

व्योमकेश असत्य भाषण से इसकी यह दशा है महाराज! देख लें, इसकी काया पीपल के पत्ते सी काँप रही है। असत्य का दण्ड भोग यह स्वयं उठा रहा है।

बृहद्रथ (दृढ़ स्वर में) किस लोभ से तुम असत्य बोल गये दूत?

दूत (काँपते शब्दों में) सद्धर्म के लोभ में महाराज! संघ के लोभ में···

बृहद्रथ (धर्मरक्षित से) सद्धर्म और संघ का लाभ असत्य से हो रहा है भन्ते!

व्योमकेश भन्ते इसका उत्तर न देंगे महाराज! भन्ते के संकेत पर उस

परम तपस्वी ब्राह्मण पुष्यमित्र को इस प्रकार कलंकित किया जा रहा है। पाटलिपुत्र के प्रधान स्थविर धर्मरक्षित का यह प्रचार श्रमण ग्रन्थों में लिखा जा चुका है जो विधाता की टाँकी बनकर सेनापति पुष्यमित्र के साथ बराबर लगा रहेगा! अपवाद के विष का उपचार कोई नहीं है राजन्! अन्य सभी विष उपचार-साध्य हैं।

बृहद्रथ सेनापति पुष्यमित्र ने धर्मसेन का सिर कब काटा ?

धर्मरक्षित आप भी उस पापी ब्राह्मण को सेनापति कह रहे हैं महाराज!

बृहद्रथ विदेशी पिशाच से देश और जाति का रक्षक पापी नहीं होता भन्ते!

अग्निमित्र (खड्ग खींचकर) इसने मेरे पिता को पापी कहा। मैं अब इसका वध करूँगा। (धर्मरक्षित की ओर वेग में बढ़ता है।) पिता और गुरु की जो निन्दा करे उसका वध....

व्योमकेश राजा के सामने किसी भी अपराधी को दण्ड देने का अधिकार तुम्हें धर्मशास्त्र नहीं देता प्रियदर्शन! यह अधिकार केवल राजा का है।

धारिणी (अग्निमित्र के सामने आकर) शास्त्र की बात आचार्य जानते हैं। लोक की बात मैं जानती हूँ, मुर्दे का वध कोई नहीं करता। श्रमण देव उसी दिन मर गये जिस दिन राजमुद्रा का उपयोग कर इन्होंने विदेशी पिशाच को अपनी जन्मभूमि पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रित किया। उसे विश्वास दिला दिया कि राजा की सेना इस संहार में विदेशी की सहायता करेगी। महाराज ने तात को सेनापति कह दिया जिसे यह सह न सके और तात को इन्होंने उस शब्द से....

बृहद्रथ किस शब्द से कुमारी ?

धारिणी वह शब्द तात के लिए कहा गया था जो मेरे मुंह से नहीं निकलेगा।

बृहद्रथ सुनो पुत्री ! तुम दोनों के दर्शन से मैं कृतार्थ हूँ। आदिकवि ने श्रीराम और सीता का जो चित्र खींचा है''''तुम दोनों वैसे ही हो''''तुम दोनों के रूप में मैं राम-सीता की जोड़ी का दर्शन कर रहा हूँ।

धर्मरक्षित प्राण-भय में महाराज ! प्राण-भय में आप शत्रु-पुत्र और उसकी प्रिया को उस रूप में देख रहे हैं।

बृहद्रथ (ठठाकर हँसता है।) आपका अनादर प्रियदर्शी पूर्वज अशोक का अनादर करना होगा। आपके संघ की स्थापना उन्हीं ने की थी। आपके पद को गौरव उन्हीं ने दिया था। सेनापति पुष्यमित्र से मैं समर करूँगा भन्ते ! उनके हाथ वही गति लूँगा जो रावण को श्रीरामचन्द्र के हाथ मिली थी।

धर्मरक्षित (दूत का हाथ उठाकर पकड़ता है।) इस राजसभा में अब तथागत का शासन नहीं चलेगा भद्र ! वाल्मीकि का आक्खानक काव्य अब शास्ता के वचनों के ऊपर बैठ गया है। मौर्य महाराज उसी के रंग में रँगे हैं। (उसे खींचते हुए) चलो, यहाँ से निकल चलें।

बृहद्रथ दण्डपाल ! इस श्रमण को बन्दी करो। राजसभा में यह झूठ बोल गया।

धर्मरक्षित इसके साथ मुझे भी महाराज ! संघाराम में आग लगवा दें। प्रियदर्शी अशोक आपके पूर्वज थे।

बृहद्रथ हाँ, थे।

धर्मरक्षित सद्धर्म के विस्तार के लिए आपके उन पूर्वज ने अपने पुत्र और पुत्री को सिंहल भेजा। राजकोष का धन उनके वंशज भी इसी कार्य में लगाते रहे।

बृहद्रथ इस असत्यवादी दूत को बन्दी करो। (दण्डपाल आगे बढ़कर दूत के दोनों हाथों में बन्धन डाल देता है।) राजा का धर्म प्रजापालन है भन्ते ! प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म है।

सद्धर्म का विस्तार करना नहीं। पूर्वजों ने प्रजा का धन इस द्यूत में लगाया! मैंने तो प्रजा के प्राण के साथ अपना प्राण भी इसी में लगा दिया। प्रियदर्शी अशोक से बड़ा काम उनके इस वंशज ने कर दिया। प्रजा का संहार, ब्रह्मचारियों और आचार्यों का संहार, शंकर और विष्णु के मन्दिरों का संहार, कुमारियों की पवित्रता का संहार, आकाश के तारे गिने जा सकेंगे भन्ते ? इस पर संहार की गणना नहीं है। हम दोनों के अपराध का निर्णय इसी सभाभवन में आचार्य व्योमकेश, आचार्य मेधातिथि और आचार्य पतंजलि करेंगे। जो दण्ड ये देंगे उसका व्यवहार सेनापति पुष्यमित्र करेंगे। सिन्धुतट से लेकर गंगा-शोण-संगम तक जिसे सभी सेनापति कह रहे हैं, मौर्य सेना के सभी सेनापति जिसे नेता मान चुके हैं वही पुष्यमित्र केवल मौर्य राज्य का नहीं समूची भारतभूमि का सेनापति है। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता भन्ते ! हम दो न भी मानें तब भी इस नगरी का जन-जन उसे सेनापति कह रहा है।

नेपथ्य में आचार्य मेधातिथि की जय''''आचार्य पतंजलि की जय''''सेना-पति पुष्यमित्र की जय''''माता भूमि की जय''''

बृहद्रथ (उत्साह में) अब अवसर आ गया आचार्य ! ब्राह्मण सेनापति से शस्त्र माँगकर इसी सभाभवन में मैं उनसे समर करूँगा। परशुराम के साथ सहस्रार्जुन का जैसा समर हुआ था।

व्योमकेश इसी सभाभवन में राजन् ! भीमसेन के साथ जरासन्ध का युद्ध भी इसके बाहर (दक्षिण द्वार की ओर हाथ उठाकर) सौ धनुष दक्षिण हुआ था। तब से इस सभाभवन में कई राजवंश आये और चले गये पर इसके भीतर कभी युद्ध नहीं हुआ।

अग्निमित्र जरासन्ध-वध राजगृह के''''

व्योमकेश (हँसकर) नहीं प्रियदर्शन ! जरासन्ध ने इस सभाभवन का और इसकी परिखा का निर्माण कराया था। इस भवन के भीतर का गंगाद्वार मार्ग पहले बना तब यह भवन····

अग्निमित्र गंगा तट तक जाने का मार्ग इसके भीतर से गया है ?

व्योमकेश हाँ···उस मार्ग में प्रकाश और वायु की उत्तम व्यवस्था है।

बृहद्रथ आचार्य ! उस मार्ग को मैं कभी नहीं देख सका।

व्योमकेश गंगा में जो विश्वास जरासन्ध को था राजन् ! आपके पूर्वजों में नहीं रहा। सम्राट् चन्द्रगुप्त आचार्य चाणक्य का धौत वस्त्र लेकर उस मार्ग से अनेक बार गंगा तट पर स्नान, पूजन, दर्शन और वायु-सेवन के लिए गये थे।

धर्मरक्षित नदी सब नदी हैं, पहाड़ सब पहाड़ हैं इनके पूजन-दर्शन में पुण्य कहाँ है ?

व्योमकेश (हँसकर) मैं नहीं कहता भन्ते कि आप वेद मन्त्र में विश्वास करें। हिमालय और गंगा से प्रेम करें। आचार्य चाणक्य और सम्राट् चन्द्रगुप्त वेदमन्त्र में विश्वास और हिमालय, गंगा में श्रद्धा, प्रेम रखते थे। परलोक में आप विश्वास नहीं करते भन्ते ! पर आपका यह लोक भी गंगा और हिमालय का दान है। हिमालय न रहे तो मेघ न बरसें और गंगा न रहें तो यह धरती ऊसर और मरुभूमि बन जाय। जहाँ इस समय आप खड़े हैं किसी काल में समुद्र के भीतर थी। भगवती गंगा ने उस समुद्र को पाट कर सौ योजन विस्तार से अधिक भूमि बना दी। वह भूमि जिसके अन्न-जल से आपके तथागत भी पले थे और हमारे श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र के साथ सभी ऋषि-मुनि पले थे। इस भूमिपर जितने जीवधारी हैं गंगा सबकी माता और हिमालय सबका पिता है। मौर्यवंश के सुमेरु चन्द्रगुप्त यही मानते थे। आचार्य विष्णुगुप्त भी यही मानते थे।

बृहद्रथ उस गंगाद्वार मार्ग का पता अब किसी को नहीं है आचार्य !

व्योमकेश मन्त्री सोमशील के पितामह के साथ एक बार उस मार्ग को मैंने देखा था पर अब अनुमान भी नहीं है सभाभवन के किस भाग से वह जुड़ा था ! महामंत्री के पितामह उस समय इस राज्य के महामन्त्री थे।

सोमशील उस मार्ग का मानचित्र पितामह के हाथ से बना मेरी मंजूषा में अभी सुरक्षित है। उससे उसके ठीक ठौर का भेद खुल सकता है। उसी मानचित्र पर मेधातिथि भी लिखा है जिसकी लिपि अनगढ़ है।

व्योमकेश (उत्सुक होकर) अवन्ती के आचार्य मेधातिथि तो नहीं। कौन जाने वह तुम्हारे पितामह के बाल-अतिथि कभी रहे हों। (दक्षिण द्वार की ओर देखकर) त्रिपुण्डधारी शंकर सा तेजस्वी वह पुरुष कहाँ से आ रहा है ?

अग्निमित्र (ध्यान से देखकर प्रसन्न मुद्रा में) अहोभाग्य !

धारिणी गंगाद्वार की खोज हो रही है तब तक तुम्हारा भाग्यद्वार कहाँ खुल रहा है ?

अग्निमित्र मेघवाहन सम्राट् के महामन्त्री तात मणिभद्र आ रहे हैं।

धारिणी (उत्सुक होकर) सचमुच ! (उधर देखकर) हरे ! हरे ! गंगाद्वार के पहले तुम्हारा भाग्य-द्वार खुल गया सौम्य ! (दौड़कर दोनों हाथों से मणिभद्र की कटि बाँध लेती है।)

मणिभद्र हैं....हैं...मन्त्री से निवेदन करना है...बाधा न डाल....[धारिणी मणिभद्र को छोड़कर विस्मय से देखने लगती है।]

मणिभद्र (ध्यान से सभा में देखकर) यह राजसभा है ? इसमें सन्धि, विग्रह, मन्त्रणा के निर्णय होते हैं या इन्द्रजाल के कौतुक राजमुकुट, मणिमाला, राजवस्त्र, सिंहासन पर पड़े हैं। बिना वस्त्र, भूषण और मुकुट के राजा किसको मानूँ। मन्त्री के वेश में कोई राजपुरुष भी इस सभा में नहीं देख पड़ता।

धारिणी मंत्री, सेनापति और राजा तीनों के अधिकार इन श्रमण देवता में सिमट गये हैं। आप इन्हीं से निवेदन करें।

मणिभद्र (घृणा की हँसी) धत् ! क्या कह रही है पगली ? यह बूढ़ा श्रमण तीनों अधिकारों का आश्रय है ?

अग्निमित्र अब तक रहा है तात !

मणिभद्र कलिंग सम्राट् मेघवाहन का मंत्री मणिभद्र पूछ रहा है इस सभा में महाराज कौन हैं ? और मन्त्री कौन है ?

बृहद्रथ अपना प्रयोजन कहें मन्त्री.....इस सभा में राजा, मन्त्री सभी स्थानभ्रष्ट हैं। आप मेघवाहन का संदेश लेकर आये हैं या सेनापति पुष्यमित्र का ?

मणिभद्र आचार्य मेधातिथि और आचार्य पतंजलि का सन्देश लेकर मैं आया हूँ। मेघवाहन अपने महामन्त्री से दूत का काम नहीं लेंगे। सेनापति पुष्यमित्र भी ऐसा साहस नहीं करेंगे। देवगुरु बृहस्पति के वश में जैसे इन्द्र हैं उसी भाँति इन परम पूज्य आचार्यों के वश में मेघवाहन हैं, उनका मन्त्री है और सेनापति पुष्यमित्र भी हैं। मौर्य सम्राट् बृहद्रथ कहाँ हैं ? कृपा कर आप यह कहें।

बृहद्रथ उस नाम का देहधारी आपसे संवाद कर रहा है जो दण्ड-भर पहले मौर्य सम्राट् था पर अब मुकुट और राजवस्त्र उतारकर इस नगरी का सामान्य जन है।

मणिभद्र आपकी महानगरी के सिंहद्वार पर दोनों आचार्य, सेनापति पुष्यमित्र आपकी सेना के अनेक सेनापतियों के साथ खड़े हैं।

बृहद्रथ तो क्या सिंहद्वार बन्द है ? मैंने उसे खुला छोड़ने का आदेश दिया था मन्त्री !

मणिभद्र आपका सिंहद्वार खुला है पर बिना आपकी आज्ञा के दोनों आचार्य उसमें प्रवेश करना अनुचित मानते हैं। वे आपकी प्रजा हैं। आपकी मर्यादा के सामने नतमस्तक हैं।

बृहद्रथ वह सिंहद्वार केवल मेरा नहीं। आचार्यों का भी है, जन-जन का है!

नेपथ्य में साधू....साधु....महाराज!

बृहद्रथ महाराज का पद मैं छोड़ चुका हूँ। आपलोग इस पद से मुझे अब न सम्बोधित करें।

नेपथ्य में तो क्या यह राज्य अराजक है...तब साहसिकों का दमन कौन करेगा?

बृहद्रथ प्रजा संगठित होकर उनका दमन करेगी।

मणिभद्र आप राजवस्त्र, मणिमाला और मुकुट धारणकर सिंहासन पर बैठें। दोनों आचार्य आपसे न्याय की कामना करते हैं। इसी निमित्त उन्हें आपकी इस राजसभा में आना है। आपके मन्त्री सोमशील इस सभा में नहीं हैं?

सोमशील इस नाम के प्राणी को आप देख लें भद्र! जो इस अधिकार से अब वंचित है।

[मेधातिथि, पतंजलि और पुष्यमित्र का प्रवेश। सभा में उपस्थित सभी जन हाथ जोड़कर इन्हें प्रणाम करते हैं। धारिणी के साथ अग्निमित्र क्रम से सबके चरणों पर मस्तक झुकाते हैं।]

मेधातिथि वस्त्र, मुकुट और राजदण्ड धारणकर सिंहासन पर चलें महाराज! हम आपसे न्याय माँग रहे हैं।

बृहद्रथ आपलोग देहधारी त्रिदेव तो नहीं हैं जिनके प्रसंग व्यास के जनकाव्य में आये हैं।

मेधातिथि मैं अवन्ती का ब्राह्मण मेधातिथि हूँ। अयोध्या के पतंजलि और विदिशा के पुष्यमित्र!

बृहद्रथ आचार्य मेधातिथि! आचार्य पतंजलि और विदिशा के सेनापति पुष्यमित्र!

[मेधातिथि आचार्य व्योमकेश को देखकर हंसते हुए आगे बढ़-

कर उनका आलिंगन करते हैं, दोनों आनन्द में सिसक उठते हैं।]

पतंजलि महाराज आप राजवेश धारण करें !

बृहद्रथ (दृढ़ स्वर में) अब देर हो गयी आचार्य ! छोड़ी हुई केंचुल सर्प फिर नहीं धारण करता।

मेधातिथि / व्योमकेश } शिव····शिव····ऐसा न कहें राजन् ! प्रजापालन कर पुण्य कमायें।

बृहद्रथ वह पुण्य अब मेरे भाग्य में नहीं है। दो पुण्य मुझे कमाने हैं यदि आप लोग आशीर्वाद दें।

पतंजलि आचार्य व्योमकेश और आचार्य मेधातिथि मेरा निवेदन सुनें ! महाराज की आँखों में जिस अडिग संकल्प का तेज है उससे मैं भयभीत हूँ।

व्योमकेश योगसूत्र के लेखक भयभीत हैं, क्या सुन रहा हूँ ?

पतंजलि देही जिस परिस्थिति में जो व्यवहार करता है, जिस परिस्थिति में जो भोग उठाता है योगसूत्र में इससे भिन्न कुछ भी नहीं है आचार्य ! हर परिस्थिति में चित्त का शुद्ध रूप ही योगसूत्र है। महाराज क्या पुण्य कमाना चाहते हैं ? उनकी आँखों का प्रमाण यदि सत्य है तो केवल मैं नहीं, उसे सुनकर आप सभी भयभीत होंगे।

व्योमकेश (ध्यान से बृहद्रथ की ओर देखकर) लगता है क्षत्रिय-धर्म ने आज महाराज के रूप में शरीर धारण कर लिया है। पर कोई चिन्ता नहीं। कहें महाराज, आप क्या पुण्य कमाना चाहते हैं ?

बृहद्रथ मैं सन्तानहीन हूँ आचार्य ! इस अभाव को मैं भरना चाहता हूँ !

मेधातिथि किस रूप में ?

बृहद्रथ इन कुमारी को मैं पहले ही पुत्री शब्द से संबोधित कर चुका हूँ। (अग्निमित्र की ओर संकेतकर) उन कुमार के हाथ में मैं अपनी पुत्री का हाथ देकर पूर्णकाम···पूर्णकाम बनना चाहता हूँ।

मणिभद्र पर यह पुण्य तो सातवाहन महारानी नागनिका लेंगी जो इस कुमारी की धर्ममाता हैं। जन्म के बाद ही जिनकी जननी परलोक सिधार गयी····जिस भगवती ने इसका पालन-पोषण अपने तन से जन्मी कन्या की भाँति कर इस योग्य किया उसका अधिकार···

पतंजलि इस पर विचार मैं करूँगा मंत्री! मुझे विश्वास है महारानी मेरे निर्णय को सुख से मान लेंगी, अपने दूसरे पुण्य की सूचना दें महाराज!

बृहद्रथ कुमारी का कन्यादान देने के बाद सेनापति पुष्यमित्र के साथ संग्राम में मुझे वीरगति मिले।

पुष्यमित्र यदि कहीं मुझे वीरगति मिले महाराज तब····

बृहद्रथ आप अपने पुत्र में अमर रहेंगे। मेरा कोई पुत्र नहीं है मुझे उसी गति से सन्तोष करना पड़ेगा। समर में लड़कर मैं क्षत्रिय जन्म को सार्थक कर लूँगा।

पुष्यमित्र आपकी हथेली में खड्ग की मूँठ का चिह्न बना है?

बृहद्रथ नहीं सेनापति! पूर्वज सम्राट् अशोक ने अपने वंशजों को शस्त्र न धारण करने का आदेश दिया था तब से इस कुल में किसी ने हाथ में न कोई शस्त्र लिया न अस्त्र!

पुष्यमित्र तब तो आपकी बायीं बाँह पर प्रत्यञ्चा का चिह्न भी नहीं होगा।

बृहद्रथ नहीं है सेनापति! हाथ से मैंने कभी न खड्ग उठाया और न धनुष···आचार्य-मण्डली यदि मेरा यह प्रस्ताव न माने तब मेरे पापों के दण्ड-स्वरूप मेरा वध हो! प्रजा के संहार का कारण मैं बना। विदेशी यवन को निमन्त्रण मैंने दिया···[उसकी

वाणी गद्‌गद् हो उठती है, आँखों से आँसू और साँस की गति बढ़ जाती है।]

मेधातिथि आपने कुछ नहीं किया राजन् ! सब कालपुरुष ने किया। मनुष्य कर्ता नहीं है। मनुष्य को यश और अपयश का भागी कालपुरुष बनाता है।

बृहद्रथ गंगा को महिमा में विश्वास श्रमण-विद्या में बाधक माना गया। इस बाधा को मिटाने के लिए इस सभा-भवन से गंगा तट तक जाने वाला मार्ग जो गंगाद्वार कहा जाता था प्रियदर्शी अशोक के समय में ही बन्द कर दिया गया। अब कोई नहीं जानता वह मार्ग इस भवन में कहाँ से उतरता था। पूर्वज अशोक के सामने बन्द हुआ या बाद में ठीक-ठीक नहीं जानता।

मेधातिथि ऐं···उस मार्ग से एक बार मैं भी गया था। तात के साथ मैं उस समय के महामन्त्री का अतिथि था। मन्त्रीदेव मेरे पिता के साथ मुझे भी ले गये थे। मन्त्री देवता ने उसका मानचित्र बनाया था। मुझसे कहीं भूल न हो रही हो तो मैं उस समय पाँच वर्ष का था। साही के काँटे की लेखनी से मैंने उस पर अपना नाम लिख दिया। अक्षर-आरम्भ का समय था बड़े भोंड़े उतरे थे।

सोमशील वह मानचित्र मेरी मंजूषा में आज भी सुरक्षित है आचार्य ! जिस पर आपके नाम के अक्षर लिखे हैं।

मेधातिथि उस मानचित्र को देखकर मैं उस गंगाद्वार का उद्धार कर सकूँगा।

बृहद्रथ तब यह मेरा तीसरा पुण्य हो आचार्य ! आप इसका उद्धार करें।

पतंजलि गंगाद्वार के उद्धार से आपके पूर्वजों के स्वर्ग का उद्धार होगा राजन् !

बृहद्रथ गंगा की धार में जैसे सगर के पुत्रों का उद्धार हुआ था। श्रमण इस कथा को कपोल-कल्पना कहते हैं। पर गंगा का सत्य इसी कथा में है इसे वे नहीं देखते।

पतंजलि यवन सेनापति के साथ जो यवन सैनिक बन्दी हैं, श्रमण आचार्य धर्मसेन बन्दी हैं, अयोध्या के आपके सेनापति बन्दी हैं। तात मेधातिथि पर ऊपर फैले वटवृक्ष की ऊँची डाल से जिस श्रमण ने भारी पत्थर दे मारा था, इन सब अपराधियों के न्याय का समय कब आयेगा ?

बृहद्रथ प्रधान स्थविर धर्मरक्षित भी इन्हीं अपराधियों में हैं आचार्य ! आप तीन आचार्य इनके अपराध का दण्ड निर्धारित करें। मुझे तो वही दण्ड मिले जो वेण को मिला था।

व्योमकेश गंगाद्वार के उद्धार में इन सबका उद्धार हो जायगा। मुझे तो वही सूझ रहा है।

मेधातिथि मुझे भी यही सूझ रहा है आचार्य ! अब शास्त्रस्वरूप पतंजलि अपना मत कहें।

पतंजलि दो गुरुओं की वाणी से भिन्न कोई दूसरा शास्त्र मैं नहीं जानता। आप दोनों का मत मुझे भी स्वीकार है।

बृहद्रथ मैं कह चुका हूँ जिस केंचुल को सर्प छोड़ देता है फिर नहीं धारण करता। मुकुट के साथ राजदण्ड भी मैं छोड़ चुका हूँ। इसे फिर न धारण करूँगा। अब मैं तथागत का नहीं, भगवान रामचन्द्र का अनुगमन कर रहा हूँ। चित्रकूट से उन्हें गुरु वसिष्ठ भी न लौटा सके। सभी आचार्य सुन लें। मुझे भी अब लौटना नहीं है। मेघवाहन के मन्त्री मेरा समाधान करें।

मणिभद्र कहें राजन् !

बृहद्रथ मेघवाहन ने अपनी सेना की सहायता देश के उद्धार में किस

लिए दी ? सेनापति पुष्यमित्र इस सिंहासन पर चरण धरें। इसी फल के लिए न !

मणिभद्र उनकी सहायता का लक्ष्य यही था !

बृहद्रथ तब फिर वही हो…मैं मौर्यराज्य सेनापति पुष्यमित्र को समर्पित कर रहा हूँ।

पतंजलि पर वे राजा कभी नहीं होंगे। ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं बनेगा। राजदण्ड सदैव क्षत्रिय के हाथ में रहे ! शास्त्र का शासन यही है।

बृहद्रथ आप लोगों का मत मेरा शास्त्र है। फिर सुन लें, जो छोड़ चुका उसे ग्रहण नहीं करूँगा।

व्योमकेश सेनापति सदैव सेनापति रहें। सिंहासन पर आचार्य चाणक्य का राजशास्त्र स्थापित किया जाय। प्रजा की रक्षा का भार सेनापति पर रहे।

मेधातिथि वह राजशास्त्र इस संस्थागार में तो अब होगा नहीं।

सोमशील है आचार्य ! सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में जहाँ रक्खा गया वहीं है।

पतंजलि उसे आदर से ले आओ भद्र !

सोमशील (सिंहासन के नीचे बनी मंजूषा से लाल वस्त्र में बँधा ग्रन्थ निकालकर) यह है आचार्य !

पतंजलि इस कार्य में हमारे साथ महाराज और सेनापति पुष्यमित्र भी योग दें।

[तीनों आचार्यों के साथ बृहद्रथ और पुष्यमित्र सोमशील के निकट पहुँचते हैं।] मेघवाहन के मन्त्री भी इस पुण्यकर्म के सहयोगी बनें। [मणिभद्र के साथ सात जन ग्रन्थ को सिंहासन पर रखकर एक साथ दोनों हाथ जोड़कर उसे प्रणाम करते हैं।]

मेधातिथि शुभ मुहूर्त में महाराज कुमारी का हाथ प्रियदर्शन के हाथ में देंगे। उसके बाद यदि महाराज हठ करेंगे तो सेनापति के साथ उनका समर भी होगा। पर गंगाद्वार का उद्धार सबसे पहले करना है।

पतंजलि सभी जन गंगाद्वार...गंगाद्वार....गंगाद्वार तीन बार उच्चारण करें।

गंगाद्वार की ध्वनि आकाश में गूँज जाती है।

पर्दा गिरता है।

इति शुभम्।
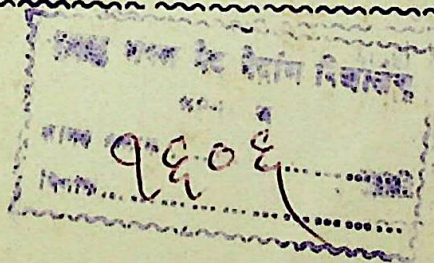
• • •

चित्त के संस्कार के लिए जिस मेधावी आचार्य पतंजलि ने योगसूत्र की रचना की, वाणी के संस्कार के लिए जिसने पाणिनि के सूत्रों पर महाभाष्य लिखा और काया के संस्कार के लिए जिसने वैद्यक की रचना की··· चित्त, वाणी और शरीर तीनों का मल दूर कर इन तीनों को शुद्ध करने वाले मुनि-प्रवर पतंजलि को करबद्ध नमस्कार देशभर के पण्डित कर रहे हैं, वे राजनीति और लोकनीति के संस्कार के लिए चाणक्य के अर्थशास्त्र जैसा आर्षग्रन्थ भी लिखे होते। यह कार्य वे विज्ञानबुद्धि आचार्य कर गये थे अतः इस आचार्य ने उस विषय पर लेखनी नहीं उठायी। पतंजलि इस युग के आचार्य चाणक्य हैं। राष्ट्र के उत्कर्ष का जो कार्य विधाता ने उन आचार्य से कराया वही उत्कर्ष कार्य वह इन आचार्य पतंजलि से भी करा रहा है।

शंकर के ताण्डव के भीतर पार्वती का लास्य देखो, प्रलय की परिधि में सृष्टि के नये अंकुर देखो। पूर्व पुरुष को यह न देखने आये होते तो अबतक वेद मिट गये होते, ऋषियों के नाम मिट गये होते····व्यासदेव और वाल्मीकि की वाणी से दिशाएँ पवित्र न होतीं।

—'गंगाद्वार' से

• • •